स्वामी रामकृष्ण

सूक्तियाँ एवं उपदेश

स्वामी रामकृष्ण परमहंस

सूक्तियां एवं उपदेश

कथात्मक-जीवनी

राष्ट्रपिता बापू	शंकर सुल्तानपुरी
पं० जवाहर लाल नेहरू	डॉ० ईश्वर प्रसाद वर्मा
लोकमान्य तिलक	शंकर सुल्तानपुरी
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद	परमेश्वर प्रसाद सिंह
छत्रपति शिवाजी	परमेश्वर प्रसाद सिंह
महाराणा प्रताप	परमेश्वर प्रसाद सिंह
लाला लाजपत राय	परमेश्वर प्रसाद सिंह
वीरबन्दा बैरागी	रामेश्वर 'अशान्त'
भगवान श्रीकृष्ण	विजय अग्रवाल
धनुर्धर अर्जुन	विजय अग्रवाल
महाबली भीम	विजय अग्रवाल
धर्मराज युधिष्ठिर	विजय अग्रवाल
क्रान्तिकारी सुभाष	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी आजाद	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी भगत सिंह	सुरेश
क्रान्तिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल'	डॉ० ईश्वर प्रसाद वर्मा
पं० दीनदयाल उपाध्याय	शंकर सुल्तान पुरी
लालबहादुर शास्त्री	डॉ० ईश्वर प्रसाद वर्मा
बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर	सूर्य नारायण त्रिपाठी
मनीषी अम्बेडकर (विचार)	भरत राम भट्ट
शिक्षा मनस्वी अम्बेडकर (विचार)	भरत राम भट्ट
शक्ति पुंज अम्बेडकर (विचार)	भरत राम भट्ट
धर्म-नैतिकता और भारत रत्न-अम्बेडकर	भरत राम भट्ट

स्वामी रामकृष्ण परमहंस

सूक्तियां एवं उपदेश

जगदीश विद्रोही

जन्म
8-11-67

मृत्यु
30-4-89

अपनी स्वप्निल चिरस्मरणीया सुपुत्री

कुमारी अनितारानी

एम० ए० (अर्थशास्त्र)

को

अश्रुपूरित नयनों से सस्नेह

समर्पित

शब्दिका

धर्म ही भारतीय राष्ट्रीय जीवन का मेरुदंड है। अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के प्रति सत्यनिष्ठ रहने के कारण ही आज वह जीवंत है। अचानक उन्नीसवीं शताब्दी के संक्रान्ति काल में जब भारत पर पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण हुआ, ऐसे समय में श्री रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव हुआ जिन्होंने हिन्दू धर्म की विशेषता, भव्यता, उसकी शक्ति के प्रति जनता-जनार्दन को जागरूक किया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने न केवल हिन्दू धर्म को महान संकट से उबारा वरन् अन्य धर्मों की साधनायें कर विभिन्न धर्मावलम्बियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए अपना अमर संदेश दिया—"जैसे फूलों में गन्ध, तिलों में तेल, ईख में मिठास व्याप्त रहती है वैसे ही शरीर में आत्मा और परमात्मा विद्यमान रहते हैं, विवेक से यह अनुभव किया जा सकता है। जगतपिता, जगत का रचयिता और पालनहार प्रभु एक ही है, लेकिन विद्वान जन उसे अनेकानेक नामों से पुकारते हैं। प्रभु क्योंकि अनेकानेक गुणों और शक्तियों का स्वामी होने के कारण ही अनेकों नाम-वाला है। एक ही ईश्वर की आराधना अलग-अलग विधियों से की जाती है। एक ही ईश्वर भिन्न-भिन्न विधियों से पूजा जाता है, वही एक ईश्वर हरेक को मनोवांछित हर्ष और सम्पन्नता प्रदान करता है।"

आज बीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष की दहलीज पर फिर अराजकता, आतंकवाद, सांप्रदायिक विद्वेष, प्रान्तीयता, भ्रष्टाचार और स्वार्थान्धता की आंधी में लोग धर्मनिरपेक्षता के अर्थ बदलकर अपना उल्लू सीधा करने में

संलग्न हैं। हमारा दुर्भाग्य, कि हम हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई होने का गर्व से दावा करते-करते इन्सानियत ही भुला बैठे हैं।

ऐसे संक्रान्ति काल में प्रस्तुत पुस्तक 'स्वामी रामकृष्ण परमहंस : सूक्तियां एवं उपदेश' समाज में एकता का संदेश दे दिशाहीन राजनीतिज्ञों के भ्रम और छलावे भरे सपनों से मानवता को अधिक आहत होने से निःसंदेह बचायेगी।

—जगजीत 'विद्रोही'

3074, रामद्वारा
चर्खेवालान, दिल्ली-6

क्रम

एक

युगपुरुष श्री रामकृष्ण परमहंस

"तुम रात के समय आकाश में बहुत से तारे देखते हो, पर सूरज निकलने पर उन्हें नहीं देख पाते; इससे क्या तुम यह कह सकते हो कि दिन के समय आकाश में तारे नहीं हैं ? इसी प्रकार हे मानव ! अज्ञान के दिनों में ईश्वर को न देख पाने पर यह मत कहो कि ईश्वर नहीं है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

भारतीय राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड धर्म है। प्राचीनकाल से भारत पर नाना प्रकार के संकट आते रहे किंतु वह अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के प्रति सजग एवं सत्यनिष्ठ रहा। भारत का इतिहास इसका प्रमाण है कि जो देश सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति निष्ठावान्, जागरूक और सचेत रहेगा वह कभी नष्ट नहीं हो सकता। इसके अभी तक अस्तित्व में बने रहने का कारण भी यही है कि जब-जब जीवन में आध्यात्मिक संकट उत्पन्न हुआ, हमारे देश में युगपुरुषों और अवतारों का जन्म हुआ।

भारत के लिए 19वीं शताब्दी संक्रांतिकाल थी। भारत में अंग्रेज़ों के आगमन से देश में पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण हुआ जिसके कारण देश के नागरिकों ने भौतिक शक्ति की चकाचौंध में पश्चिम की प्रत्येक वस्तु को गले लगाने की चेष्टा की। संसार का सबसे बड़ा धर्माधिकारी ईसाई-धर्म धीमे-धीमे इस देश पर अपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा करने लगा।

ठीक ऐसे ही कठिन समय में भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा के

लिए स्वामी रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव युग-प्रयोजन-पूर्ति के लिए हुआ। उन्होंने हिन्दू-धर्म की भव्यता, विशेषता और उसकी अपार शक्ति के प्रति भारतीय जनजीवन को जागरूक किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्री रामकृष्ण हिन्दू-धर्म को इस महान् संकट से उबारने के लिए ही जन्मे थे। श्री रामकृष्ण परमहंस न केवल हिन्दू-धर्म वरन् सभी धर्मों के प्रतिनिधिस्वरूप थे; क्योंकि उन्होंने न केवल हिन्दू-धर्म की, वरन् अन्य धर्मों की भी साधनाएं कीं और यह प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया कि आज के वास्तविक वैज्ञानिक हृदय में जो भ्रांति है वह निष्कपट होते हुए भी एक आपेक्षिक सत्यता तो है। यदि दिव्य-दर्शन मिथ्या है तो दृष्टिभ्रम के कारणों की आधारभूत खोज तक पहुंचने की आवश्यकता अवश्य है। माया अनादि है और काल की सीमा से रहित, इसलिए अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ज्ञान का मार्ग निराकार ब्रह्म का मार्ग है और भक्ति-मार्ग देहधारी साकार भगवान का मार्ग है। इसी सहज प्रेरणा के भक्ति-मार्ग पर चलकर श्री रामकृष्ण परमहंस ने संसार का मार्ग-दर्शन किया।

उन्होंने समस्त संसार की वेदना को चाहे वह कितनी ही अपवित्र और प्राणघाती क्यों न लगी—उसी में वे रम गए चूंकि तमाम अज्ञानी मनुष्य भी उनकी दृष्टि में मां की संतान थीं। मनुष्यों में कितनी ही आपसी कलह हो, मतभेद हों, परस्पर विरोधी विचारधाराओं के पक्षपाती हों—सभी सर्वशक्तिमान परमेश्वर के ही प्रकाशपुंज हैं। अत: उन सभी से प्रेम करना ही भगवान् को प्रेम करना है। संसार के सभी धर्म भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा उसी परमपिता परमात्मा की तरफ जाते हैं।

समस्त मानव जाति को उनका संदेश था—"मैंने हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न पंथों का अनुसरण किया और साथ ही मुसलमान और ईसाई धर्मों का अनुशीलन भी कियां है।...मैंने अनुभव किया कि सभी के कदम उसी एक परमात्मा की ओर बढ़ते जा रहे हैं यद्यपि दिशाएं और पथ भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। तुम्हें भी एक-एक बार प्रत्येक विश्वास की परीक्षा स्वयं करके देख लेनी चाहिए। एक ही तालाब के अनेक घाट हैं। एक घाट पर हिन्दू अपने कलसों में पानी भरते हैं और

उसे 'जल' कहते हैं, दूसरे घाट पर मुसलमान अपनी मस्कों में पानी भरते हैं उसको उन्होंने 'पानी' कहा और तीसरे घाट पर ईसाई लोग जल लेते हैं वे उसे 'वाटर' के नाम से सम्बोधित करते हैं। भिन्न-भिन्न नामों के आवरण के नीचे एक ही वस्तु है और प्रत्येक उसी वस्तु की खोज कर रहा है। हम जिसे कृष्ण के नाम से पुकारते हैं, वही शिव है, वही आद्याशक्ति है, वही ईसा है और वही अल्लाह है—सब उसी एक परमेश्वर के नाम हैं। फिर हिन्दू, मुसलमान, वैष्णव, ईसाई और अन्य धर्मावलम्बियों में परस्पर लड़ाई-झगड़ा समझ में नहीं आता, कितनी हास्यास्पद बात लगती है। वे वास्तव में यह विचार क्यों नहीं करते कि जलवायु, स्वभाव तथा नाम में भिन्नता किसी वस्तु की वास्तविकता तो नहीं बदल सकती। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म पर चलने दो। अगर उसके मन में भगवान् को जानने की प्रबल लालसा है, इच्छा है, तो उसे शांतिपूर्वक उसके मार्ग पर चलने दो – वह अवश्य ही उसे पा लेगा।"

"धर्म कभी पूर्ण नहीं होता—यह है एक अविराम कर्म, एक अविराम कामना—एक निरन्तर प्रवाहित होते रहने वाला जलप्रपात, किन्तु वह बद्ध जलाशय कदापि नहीं है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

समस्त पदार्थों के अन्दर रामकृष्ण केवल भगवान् के सुन्दर रूप को ही देखते थे। उनकी आत्मा एक प्रज्वलित अग्निपिंड की तरह थी जिससे उगलती ज्वालशिखायें एक-एक देवता के सदृश दृष्टिगोचर होती थीं। उन्होंने माया की शक्ति का अनुभव कर जान लिया था कि जीवन में, मृत्यु में, दुख के अन्तराल में—यह माया दिव्यमाता विद्यमान है। ब्रह्म, शक्ति या माया सब एक और अभिन्न वस्तु हैं।

रामकृष्ण दूसरों के अन्दर अपनी आध्यात्मिक शक्ति संचारित करके उन्हें ऊर्ध्वतम चेतना तक पहुंचाने में अक्षम थे। न यह सम्मोहनावस्था थी और न वह गम्भीर निद्रा की अवस्था।

उन्होंने इस संसार को एक कर्मभूमि माना था जिसमें मनुष्य उसी प्रकार काम करने के लिए आता है जैसे आसपास के निवासी गांवों से कलकत्ता नगरी में आते हैं।

वे अपने शिष्यों की स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे जिसे वे अक्षुण्ण रखना चाहते थे क्योंकि वे असाधारण व अद्भुत यौगिक शक्तियों के अधिकारी भी थे। पर रहस्यमयी ढंग से अलौकिक चमत्कार प्रदर्शन के वे पूर्ण विरोधी थे। अलौकिक चमत्कारों को असम्भव न मानते हुए भी उन्हें निरर्थक व हानिकारक मानते थे चूंकि ऐसी शक्तियां आध्यात्मिक पूर्णता के मार्ग में बाधक बन जाती हैं। उनकी शिक्षा का ब्रह्मचर्य एक महत्त्वपूर्ण अंश था --

"यदि भगवान् को पाना है तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है, क्योंकि वासना से आबद्ध कलुषित घर में भगवान् आने से इंकार कर देंगे। पूर्ण ब्रह्मचर्य से मनुष्य को अतिमानव शक्तियां प्राप्त होती हैं जिससे उसके अन्दर नवइन्द्रिय का जन्म होता है जिसे 'बुद्धि-इन्द्रिय' कहते हैं। वह प्रत्येक वस्तु को परख सकता है, जान सकता है और सभी वस्तुओं का स्मरण कर सकता है। इसलिए कामिनी-कांचन का परित्याग परम आवश्यक है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उनका कथन था—"पहले चरित्र का निर्माण करो, आध्यात्मिकता का अर्जन करो, बाद में फल अपने आप अर्जित हो जायेगा।"

"यदि तुम सदैव भूतों के बारे में सोचते रहोगे तो तुम स्वयं भी भूत हो जाओगे। यदि तुम भगवान् का स्मरण करोगे तो तुम भी भगवान् बन जाओगे। परमात्मा ने अपनी महिमा प्रदर्शन के लिए ही मनुष्य की सृष्टि की है।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा है --"जब भी धर्म की हानि होगी और अधर्म का अभ्युत्थान होगा तब साधुओं के परित्राण एवं पापाचारियों को विनष्ट करने के लिए मैं युग-युग में अवतीर्ण होता हूं।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, बुद्धदेव, रामानुज, शंकराचार्य और चैतन्यदेव की तरह ही स्वामी रामकृष्ण ने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के विरोध भरे कोलहल की आवाज को सुना और अपने समस्त जीवन भर अद्भुत प्रचारक की तरह समन्वय और एकता जागृत करने के लिए जुट गए थे। उन्होंने संसार को संदेश दिया—

"अवतारी पुरुष समाधि में ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस के साथ ही वे ऊपर से नर वेश में धरा पर अवतीर्ण होते हैं ताकि वे पिता व माता के रूप में भगवान् को प्यार कर सकें। जब वे 'नेति-नेति' कहते हैं तो वे सीढ़ी के एक-एक कदम को पीछे छोड़ते जाते हैं, ताकि वे छत पर पहुंच जाएं और फिर छत पर पहुंचकर वे कहते हैं 'इति' (वह यह है)। परन्तु शीघ्र ही उन्हें यह मालूम हो जाता है कि जिस ईंट व चूने से छत का निर्माण हुआ है, सीढ़ी के कदम भी उसी के बने हुए हैं। तब वे सीढ़ी के द्वारा कभी ऊपर छत पर व कभी नीचे जमीन पर चढ़-उतर सकते हैं। परब्रह्म ही वह छत है और यह लीला-जगत् ही सीढ़ी है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

वास्तव में श्री रामकृष्ण में भक्तियोग और ज्ञानयोग का स्पष्ट समन्वय मिलता है जैसे उन्होंने कहा—"ब्रह्म अलेप हैं। उनमें तीनों गुण हैं किन्तु फिर भी निर्लिप्त हैं। जिस प्रकार वायु में सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों समान रूप से मिलती हैं, परन्तु वायु निर्लिप्त है।"

"काशी में शंकराचार्य रास्ते से गुजरते समय अचानक एक चाण्डाल, जो मांस का भार लिए निकल रहा था, से टकराने पर क्रोधित मुद्रा में बोले, "तूने मुझे छू लिया!" चाण्डाल ने उत्तर दिया—"श्रीमन्, न मैंने आपको छुआ न आपने मुझको, आत्मा निर्लिप्त है, आप वही शुद्ध आत्मा हैं।" शंकराचार्य अवाक् रह गये।

"प्रश्न उठता है, क्या आप देह हैं, मन हैं या बुद्धि हैं—विचार कीजिए। शुद्ध आत्मा निर्लिप्त है—सत, रज और तम इन तीनों गुणों में से किसी में निर्लिप्त नहीं है।"

"ब्रह्म गुणातीत है, माया से परे है। अविद्या-माया और विद्या-माया इन दोनों से परे हैं। कामिनी और कांचन अविद्या हैं; ज्ञान, भक्ति, वैराग्य ये सब विद्या के ऐश्वर्य हैं और चिन्ता, विद्या माया हैं।"

"एक वस्तु के ऊपर अगर दूसरी वस्तु हो तो एक को बिना हटाये दूसरी वस्तु कैसे मिल सकती है। इसी प्रकार ईश्वरमय

दिखते रहने के लिए सांसारिक वस्तुओं का त्याग मन से ही करना होगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उन्होंने वेदान्त साधना की दीक्षा श्री तोतापुरी से ली थी जिन्होंने अपने परम शिष्य को 'परमहंस' की उपाधि से विभूषित किया था।

अद्वैत अवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपनी दशा का वर्णन किया—"कितने ही दिन हर गौरी-भाव में बिताये, कितने ही राधा-कृष्ण भाव में और कितने ही दिन—सीता-राम भाव में! राधा-भाव के समय लगातार श्रीकृष्ण का ध्यान और सीता-भाव के समय राम का ध्यान हृदय से दूर नहीं जाता था।"

निरन्तर 8 वर्ष कभी स्त्री वेश लेकर 'हरि-हरि' का जाप करते कभी 'अल्लाह-अल्लाह' पुकारते। कभी 'राम-राम' की रट लगाते तो कभी 'माता-माता' की व्याकुल पुकार उनके हृदय से गूंजती सुनाई पड़ती। वे महासमाधि में भी रहते।

"आत्महत्या करने के लिए एक सूई ही काफी है, लेकिन जब दूसरे को मारना है तो ढाल-तलवार आदि सभी शस्त्र चाहिए।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

कच्चे अहंकार के पूर्ण त्याग करने के बाद ही उनमें दिव्य शक्ति प्रकट हुई थी जिससे उनमें 'लोकगुरु', 'जगद्‌गुरु' के भावों का इतना अपूर्व और पूर्ण विकास हो पाया था।

"एकनिष्ठ भक्त अपने गुरु का प्रेमी तो होता ही है, पर गुरु का नातेदार या गुरु के गांव के किसी मनुष्य के मिल जाने पर उसे एकदम गुरु का स्मरण होकर वह उसी को गुरु कहकर प्रणाम करेगा। गुरु जो कहे वही उसके लिए प्रमाण होता है। भक्त की गुरु-भक्ति इतनी उच्च अवस्था में पहुंच जाने पर उसे अपने गुरु में कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता, उसकी दृष्टि ही उस तरह की हो जाती है। पांडु रोग वाले मनुष्य को जैसे सभी कुछ पीला ही पीला दिखाई पड़ता है, वैसे ही उसको भी हो जाता है। उसको भी सभी तरफ 'ईश्वर ही सब कुछ हो गया है'—ऐसा दिखाई देने लगता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अर्थात् अन्त में मन ही गुरु बन जाता है। गुरु उस इष्टदेव के साथ ही एकरूप हो जाते हैं। गुरु, कृष्ण और वैष्णव (गुरु, भगवान और भक्त) ये तीनों एक ही हैं—एक के ही ये तीन रूप हैं।

"चौसर की गोट सभी घरों में घूमने के बाद अपने घर में पक कर विश्राम करती है। सबसे निम्न कोटि के मनुष्य से लेकर सार्वभौम सम्राट् तक के संसार के लोगों की अवस्था देखने, सुनने और अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् ही मन की दृढ़ धारणा बनती है कि इस संसार का सब कुछ तुच्छ है, मिथ्या है, असार है, तभी साधक परमहंस पद को प्राप्त कर ज्ञानी बनता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

पानी की आवश्यकता होने पर पृथ्वी जहां खोदें पानी निकल आता है। लेकिन जहां पर कुआं, तालाब, बावड़ी या सरोवर हो वहां जमीन खोदने की आवश्यकता नहीं होती, थोड़ा हाथ नीचा करते ही पानी मिलता है—उसी प्रकार ईश्वर सभी स्थानों में समान रूप से व्याप्त है।

दो

वंशावली का पारिवारिक प्रारूप
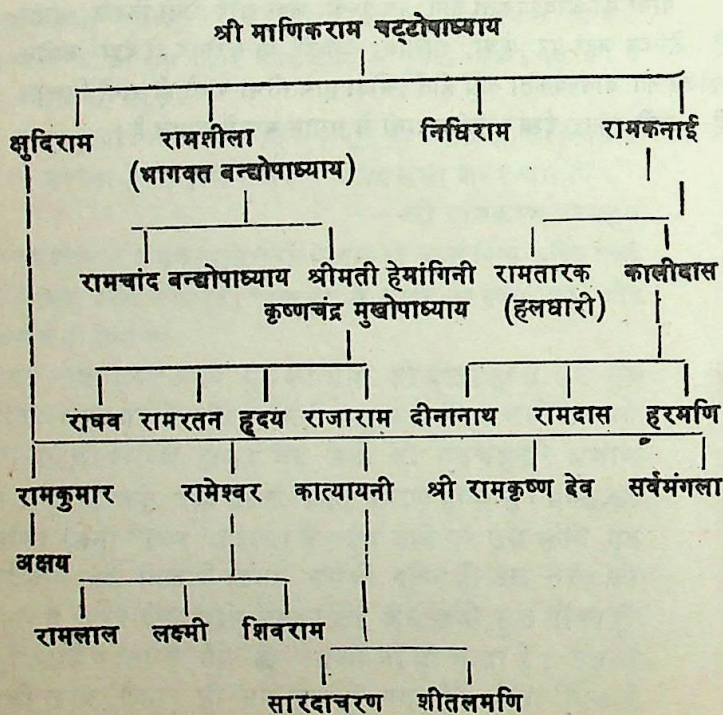
"ईश्वर निराकार हैं तथा ईश्वर साकार भी हैं। फिर वे स्वयं साकार-निराकार के भी परे हैं। केवल वे ही बतला सकते हैं कि वे और क्या हैं ?"

"ईश्वर के साकार रूप के दर्शन किए जा सकते हैं; इतना ही नहीं हम उनका उसी प्रकार स्पर्श कर सकते हैं, जिस प्रकार अपने किसी प्रिय का।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

बंगाल के हुगली जिले के देवपुर गांव में माणिकराम चट्टोपाध्याय नामक ब्राह्मण परिवार था। इन्हीं के घर में सन् 1775 में एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया क्षुदिराम। पिता गांव के मुखिया थे जो अपने परिवार का भरण-पोषण अपनी 50 एकड़ जमीन से भली प्रकार कर लेते थे। वे धर्मपरायण और दयालु होने के नाते गांव के दीन-दुखियों की सहायता में संकोची नहीं थे। क्षुदिराम के पश्चात् उनके दो पुत्र और एक कन्या भी जन्मी किन्तु अचानक एक दिन उनका देहावसान हो गया।

माणिकराम की मृत्यु के पश्चात् परिवार का बोझ ज्येष्ठ पुत्र क्षुदिराम पर ही आ पड़ा जिन्होंने अपने धर्मनिष्ठ परिवार की परम्पराओं की मर्यादा गृहस्थ-जीवन के विभिन्न सामाजिक अनुष्ठानों और धार्मिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाते हुए अपनी दानशीलता और दयालुता की छाप ग्रामवासियों पर छोड़ी जिसके कारण वे शीघ्र ही श्रद्धा, प्रेम और आदर के पात्र समाज में बन गए। उनकी पत्नी का नाम चन्द्रामणि देवी था जो अपने कुलदेवता श्री रामचन्द्र की अनन्य भक्त थीं। इससे पूर्व पिता की मृत्यु से पहले क्षुदिराम का विवाह हो गया था। किन्तु छोटी उम्र में ही पत्नी के देहान्त के पश्चात् 24 वर्ष की आयु में 1799 को चन्द्रामणि से पुन: विवाह हुआ था जिसकी आयु केवल 8 वर्ष थी। सन् 1806 में उनके प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम रामकुमार रखा गया।

अचानक क्षुदिराम के जीवन में एक संकट आया। उस गांव के जमींदार रामानन्द राय ने अपनी दुष्ट प्रवृत्ति के कारण उनसे प्रार्थना की कि वे एक ग्रामवासी के विरुद्ध झूठी गवाही दें। यह कार्य क्षुदिराम की सत्यनिष्ठा और निडरता पर वज्रपात था इसलिए उन्होंने इस प्रार्थना को ठुकरा दिया।

सत्य और न्याय की रक्षा के लिए उन्होंने देवपुर गांव त्याग दिया चूंकि उस कुटिल जमींदार के उत्पीड़न का मुकाबला करना उस समय उनके परिवार के सामर्थ्य से बाहर था। जमींदार ने उनकी 150 बीघा जमीन नीलाम करा उन्हें अर्थहीन और आश्रयहीन बना डाला था। इस प्रकार वह नवजात बालिका कात्यायनी और सुपुत्र रामकुमार के साथ पत्नी चन्द्रामणि सहित गांव छोड़ने पर विवश हो गये।

उनके एक मित्र सुखलाल गोस्वामी हुगली जिले के पश्चिमी कोने में स्थित कामारपुकुर गांव में निवास करते थे। जब उन्हें क्षुदिराम के सम्बन्ध में सारी जानकारी ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी डेढ़ बीघा जमीन सहायता स्वरूप देकर अपनी सहृदयता का परिचय दिया। वैसे इस आघात से क्षुदिराम का हृदय टूट गया था और उन्होंने अपना अधिकतम समय भगवत्-भजन, पूजा-पाठ, श्री रामचन्द्र जी की इच्छा समझकर उनके चरणों में ही लगा दिया। जैसे वे एक प्रकार से वानप्रस्थी हो गये थे।

इसी बीच एक दिन जब वे निकट के गांव से घर लौट रहे थे, एक वृक्ष की छाया में थकान के कारण लेटकर विश्राम की मुद्रा में अनायास ही नींद की गोद में सो गये। उन्होंने स्वप्न में बालरूप में भगवान् रामचन्द्र को देखा। अपनी अंगुली के संकेत से उनकी ओर इशारा करते वे दृष्टिगोचर हुए। तभी एक धान के खेत में पड़ी शिला का स्वर गूंजने लगा—"इस एकान्त में भूखा-प्यासा कई दिनों से मैं पड़ा हूं, तेरी सेवा ग्रहण करने की मन में बड़ी प्रबल-इच्छा है, मुझे अपने घर ले चल।"

नींद टूटते ही क्षुदिराम सिहरकर उठ खड़ा हुआ और बढ़ते कदम उस धान के खेत में पड़ी शिला तक पहुंच तो गया किन्तु उस पर बैठे काले नाग को अपने पूरे फन फैलाये देख एक क्षण को हतप्रभ हो उठा। क्षुदिराम निडरता से भगवान की असीम कृपा समझ आगे बढ़ा। तभी वह काला नाग अचानक अदृश्य हो गया। निकट पहुंचकर उस सुन्दर शिला को उन्होंने आत्मविभोर मुद्रा में हृदय से लगा लिया, आंखों से आंसुओं की धार बह निकली। शिला को बड़े आदर और निष्ठापूर्वक अपने घर में प्रतिष्ठित कर उसकी नित्यप्रति पूजा में संलग्न हो गये।

अब कामारपुकुर के शांत और सुखमय वातावरण में क्षुदिराम ने

अपना नया जीवन प्रारम्भ कर दिया था। कुटुम्ब की स्थिति धीरे-धीरे सुधरी और परिजनों का पालन-पोषण सुचारु रूप से चलने लगा। समय के साथ उनका हृदय रघुवीर शिला-पूजन में इस प्रकार रमता चला गया जैसे सांसारिक बन्धनों की बेड़ी तोड़ वे भगवान् के दिव्य-दर्शनों के ही अभिलाषी हों।

सरल हृदय क्षुदिराम की निष्ठापूर्ण आस्था और आराधना से ग्राम-वासी प्रभावित हो उनका आदर-सत्कार करने लगे। इस प्रकार लगभग 6 वर्ष का समय बड़ी सरलता और तन्मयता से व्यतीत होने पर उन्होंने अपनी सुपुत्री कात्यायनी का विवाह आनूर गांव के निवासी केनाराम वन्द्योपाध्याय से कर दिया और उनकी बहन से अपने सुपुत्र रामकुमार का विवाह कर लिया। रामकुमार साहित्य शास्त्र और व्याकरण शास्त्र का अभ्यास करने के पश्चात् स्मृति शास्त्र की ओर आकर्षित हुआ और पूर्ण अध्ययन कर जीविकोपार्जन में क्षुदिराम की सहायता करने लगा।

1824 में गृहस्थी का बोझ रामकुमार पर डाल क्षुदिराम दक्षिण की तीर्थ-यात्रा पर निकल पड़े। एक वर्ष अनेकों मन्दिरों के दर्शन लाभ करते हुए वे सेतुबन्ध रामेश्वरम् से एक वाणलिंग लाकर उन्होंने अपने पूजागृह में स्थापित किया। उन्होंने यह कठिन यात्रा पैदल ही एक वर्ष में समाप्त कर डाली और दूसरे वर्ष ही 1826 में उनकी पत्नी ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रामेश्वर रखा गया।

समय बीतने लगा। ठीक 11 वर्षों की आराधना के पश्चात् क्षुदिराम का मन गयाधाम की यात्रा के लिए मचल उठा। गयाधाम की तीर्थ-यात्रा के लिए भी उन्होंने पैदल ही जाने का संकल्प किया।

वाराणसी से श्री विश्वनाथ जी के दर्शन लाभ करने के पश्चात् क्षुदि-राम गयाधाम पहुंचे। प्रायः एक महीने के प्रवास में उन्होंने तीर्थ के सारे कार्यों को सम्पन्न करने के पश्चात् श्री गदाधरदेव के श्रीपादपद्मों में पिंड-दान किया। उनका हृदय कृतज्ञता, नम्रता और प्रेम से परिपूर्ण हो गया जब अनुभव किया कि ईश्वर ने उनकी सेवा स्वीकार कर ली।

रात को विश्राम करते समय उन्होंने एक स्वप्न देखा—पितर दिव्य देह धारण कर पिंड को स्नेहपूर्वक ग्रहण कर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

आनन्दित मुद्रा में वे उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। तभी लगा एक दिव्य ज्योति का प्रकाश मन्दिर में फैलता जा रहा है। सामने सिंहासन पर एक तेजस्वी श्यामसुन्दर दिव्य पुरुष की स्तुति में अपने सारे पितर करबद्ध उनके निकट गम्भीरता से खड़े हैं। उस दिव्य पुरुष ने उन्हें अपने निकट आने का आदेश दिया और वे यंत्रवत् भक्ति भाव से श्रद्धापूर्वक पहुंचकर प्रणाम करते हैं। दिव्य पुरुष ने गम्भीर स्वर में मुस्कराते हुए कहा—"क्षुदिराम, मैं तुम्हारी भक्ति से पूर्णतया प्रसन्न हूं। पुत्र रूप में तुम्हारे घर पर अवतीर्ण होकर मैं तुम्हारी सेवा ग्रहण करूंगा। मेरी इच्छा को पूर्ण करने में तुम बाधक बनने का प्रयत्न न करो।"

क्षुदिराम ने देव-स्वप्न मौन, स्तम्भित और आत्मविभोर मुद्रा में देखा और उस क्षण चेतनारहित हो गये। दो-चार दिन वे नाना प्रकार के विचारों में डूबते-उतराते रहे और फिर गयाधाम से 1835 को वैशाख मास में ही कामारपुकुर वापिस लौट आये।

एक दिन पत्नी चन्द्रादेवी ने क्षुदिराम से उनकी अनुपस्थिति में देखे स्वप्न की चर्चा करते हुए कहा—"आप जब गयाधाम गये तो एक रात मुझे आभास हुआ कि कोई ज्योतिर्मय देव मेरी शय्या पर लेटे हैं। पहले मुझे लगा आप होंगे, किन्तु तभी चेतना जागी कि किसी मानव के लिए ऐसा रूप धारण करना सम्भव नहीं। मैं डरी और नींद खुल गई। लेकिन मुझे फिर भी प्रतीत हुआ कि वह व्यक्ति शय्या पर ही है। दूसरा विचार फिर आया कि सम्भवत: कोई दुष्ट व्यक्ति बुरे उद्देश्य से आ घुसा हो और उसके पैरों की आहट से ही नींद टूटी हो। झटपट दीया जलाया, किन्तु कुछ दिखाई नहीं दिया। घर का दरवाजा यथावत् बन्द मिला। प्रातःकाल जब धनी लुहारिन को घटना सुनाई तो वह बोली, 'बुढ़ापे में लगता है तू पगला गई है। जो भी सुनेगा, तू बदनाम ही होगी। अच्छा है किसी को आगे कुछ न बताना।' सोचा आपको आने पर ही सपने की कथा कहूंगी।"

"...और एक दिन जब धनी के साथ युगियों के शिव-मन्दिर के अंदर खड़ी थी तो सहसा देखा कि श्री महादेव जी के शिवलिंग से दिव्य ज्योति निकलकर पूरे मन्दिर को आलोकित कर रही है। कुछ क्षण बीतने के बाद वह ज्योति वायु की तरह हिलोर लेती हुई मेरी ओर बढ़ी और चारों ओर

से आच्छादित करती तीव्रगति से मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गई। भय, विस्मय से स्तम्भित, मैं कांपती हुई मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ी। धनी ने मुझे वात-रोग बताया। तुम बताओ मुझे कोई रोग हुआ है या देव की कृपा हुई है ?"

क्षुदिराम ने तत्काल गयाधाम में अपने द्वारा देखे गये स्वप्न की कथा चन्द्रादेवी को सुनाते हुए कहा—"मुझे भी ईश्वर ने स्वप्न में बतलाया है कि हमें शीघ्र ही पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी, चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

फाल्गुन मास के छः दिन बीत गये थे कि चन्द्रादेवी ने दोपहर को घटी घटना से भयभीत हो क्षुदिराम को बतलाया—"आज एक हंस पर चढ़े देवता का दर्शन हुआ। कड़कती धूप से उनका मुख लाल हो गया था। सहसा मेरे मुंह से निकल पड़ा—'ओ हंस वाले देव ! धूप से तुम्हारा मुख मलिन हो गया है। मेरे घर रात का भात रखा है। भोजन करने के पश्चात् विश्राम करो, फिर जाना।' देवता ने हंसते हुए यह बात सुनी और न जाने कैसे कब वह आकृति आंखों से ओझल हो गई। कहीं ऐसा तो नहीं मुझ पर गोसाईं का आवेश हुआ हो ! ग्रामवासी मानते हैं कि सुखलाल गोसाईं की मृत्यु के बाद घर के सामने खड़े विशाल वकुल वृक्ष पर वे भूत बनकर वास करते हैं।"

क्षुदिराम ने हंसते हुए उसकी शंकाओं का समाधान करते हुए कहा कि यह सब तुम्हारा भ्रम है। महापुरुष का जन्म निश्चित है।

उन्होंने पत्नी से कहा कि धनी रात को घर पर ही सोया करेगी जिस से किसी प्रकार भयभीत होने और शंका करने की आवश्यकता नहीं।

दिन ढलने के पश्चात् धनी ने सूतिकागार मकान की एक छोटी कुटिया में बना दिया जिसमें एक ओर धान कूटने का ढेंकला और धान सिझाने का चूल्हा रखा था, चूंकि घर में स्थानाभाव था। चन्द्रादेवी ने सायंकाल भी प्रसव-पीड़ा के लक्षण अनुभव किये।

रात्रि आई। क्षुदिराम और रामकुमार भोजनादि से निवृत्त हो सोने चले गये और धनी लोहारिन चन्द्रादेवी के निकट ही उसी कुटिया में साथ विश्राम करने लगी।

रात बीतने से पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में प्रसव-पीड़ा तीव्र होने पर चन्द्रादेवी

ने एक पुत्र को जन्म दिया। किन्तु आश्चर्य यह कि धनी ने व्यवस्था करते समय जहां नवजात शिशु रखा था वह वहां से कहीं अन्तर्हित हो गया। धनी बड़ी घबराई और दीपक की लौ तेज कर चारों ओर ढूंढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

तभी उसकी नजर धान के चूल्हे में पड़ी जहां शिशु फिसलकर गिर जाने के कारण भस्माच्छादित हो गया था। धनी ने शीघ्रता से नवजात शिशु को उठाकर तन पर लगी राख पोंछ डाली। उसने देखा कि शिशु अत्यन्त सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और डील-डौल में 6 माह के शिशु सरीखा जन्मा है।

इस प्रकार 1757 शकाब्द (बंगला सन् 1242) 6 फाल्गुन, बुधवार, रात्रि-अवसाने (अर्धघटिका रात्रि अवशिष्ट रहते समय) कुम्भलग्ने प्रथम नवांशे जन्म ॥ कुम्भ राशि, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के प्रथम पाद में श्री रामकृष्ण का जन्म हुआ जिसका नाम गदाधर रखा गया था।

तीन

जन्म तथा शैशव गाथा

"चौकीदार चोर-लालटेन से रोशनी फेंककर हर किसी को देख सकता है, पर दूसरा उसे नहीं देख सकता, जब तक वह स्वयं प्रकाश को अपनी ओर न करे। इसी प्रकार भगवान् सबको देखते हैं, पर उन्हें कोई नहीं देख पाता, जब तक वह स्वयं कृपा करके अपने को प्रकट न करें।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

कामारपुकुर ऊंचे तमालतरुओं, बड़े तालाबों और धानों के खेतों से घिरा गांव है जो किसी समय अवश्य ही समृद्धिशाली और सपन्नता से परिपूर्ण होगा। इसकी कहानी वहां की पुरानी इमारतों के खण्डहरों, ऊंची-ऊंची दीवारों और भव्य मन्दिरों के अवशेषों में स्मृतिचिह्नों के रूप में अपनी भव्यता की गाथा सुनाती नजर आती है।

18 फरवरी, सन् 1836 में क्षुदिराम की सहधर्मिणी चन्द्रादेवी ने रामकृष्ण नाम से विश्व में विख्यात बालक को जन्म दिया था जिसका बचपन का नाम गदाधर था और स्नेहवश लोग उन्हें 'गदाई' कहकर पुकारा करते थे। शैशवकाल में रामकृष्ण बड़े ही चंचल, सुन्दर, हंसमुख किन्तु नटखट थे। उनमें नारी सुलभ माधुर्य भी था जो जीवनपर्यन्त अक्षुण्ण बना रहा।

एक दिन जब गदाधर की आयु मात्र सात माह की थी, चन्द्रादेवी

उसे अपना दूध पिला घरेलू काम-काज निवटाने में व्यस्त हो गई। ध्यान आने पर जब वह उस स्थान पर गदाधर की सुध लेने पहुंची तो अवाक् हो देखा वहाँ एक अपरिचित विशालकाय व्यक्ति सोया पड़ा है। भयभीत पत्नी दौड़कर क्षुदिराम को बुलाने पहुंची। क्षुदिराम पत्नी सहित जब लौट कर वहां पहुंचे तो गदाधर को उसी स्थान पर विश्राम की मुद्रा में पाया। शंकालु चन्द्रादेवी ने विस्मित हो कहा—"अभी इसी स्थान पर उस दीर्घाकार मनुष्य को मैं अपनी आंखों से देख तुम्हें बुलाने दौड़ी थी। किसी ओझा व पंडित को बता कर कोई उपाय पूछो!" उन्होंने उत्तर दिया — "तुम घबराओ मत, साक्षात् श्री रामचन्द्र जी पूजाघर में विद्यमान हैं, बालक का अनिष्ट कदापि सम्भव नहीं है।"

इसी प्रकार आनन्द, उत्साह तथा आशंका के पालने में गदाधर का बचपन घुटनों चल कर बड़ा होता गया और पाँच वर्ष आनन-फानन में व्यतीत हो गये। मेधावी चपल बालक अपने पूर्वजों के नाम, छोटे स्तोत्र, रामायण, महाभारत के विचित्र उपाख्यान एक बार सुन कर ही अधिकांश कंठस्थ करने में सक्षम पाने पर पांच वर्ष की उम्र में लाहा बाबुओं की पाठशाला में अध्ययन के लिए भिजवा दिया गया।

किन्तु गदाधर की रुचि पाठशाला न जाकर साथियों के साथ गांव के बाहर खेलने, समीप कहीं भजन, नाटक आदि देखने-सुनने में लगाने की थी। अच्छाई यह भी थी कि वह अपने द्वारा किये किसी कर्म को छुपा कर मिथ्या का आश्रय नहीं लेता था और न दूसरों का अनिष्ट करने की चेष्टा करता। गांव के बाहर कुम्हारों के मकान थे जहां वे देव-देवियों की मूर्तियां निर्माण करते थे। गदाधर उस विद्या को बड़े ध्यान से देखता और अपने घर भी उसी प्रकार की मूर्तियां बनाने का अभ्यास करता वह पाया जाता। चित्रकारों के चित्र देख वैसे ही चित्र बनाने में वह जुट जाता। इस प्रकार उसकी ऐसी ही अपूर्व स्मृति शक्ति तथा मेधा उसके जीवन में आगे चल कर विशेष सहायक बनी।

उसने पाठशाला की पढ़ाई में तो प्रगति की किन्तु गणित ने उसे उदासीन किया। एक दिन उसकी बूआ रामशीला पर श्री शीतला देवी का भावावेश होने पर गदाधर ने श्रद्धापूर्वक ध्यानमग्न मुद्रा में शारीरिक

परिवर्तन होते देख परिजनों ने कहा—"बूआजी के शरीर में जैसी देवी आई, मेरे शरीर में भी वैसे ही आये तो बड़ा अच्छा हो।"

माणिकराज के भाई श्री रामजय बन्द्योपाध्याय ने क्षुदिराम से कहा —"मित्र, तुम्हारा पुत्र साधारण नहीं लगता है, इसमें देव-अंश विशेष रूप में विद्यमान हैं। निश्चय ही यह होनहार बालक भविष्य में महापुरुष बनेगा।"

यह ठीक है क्षुदिराम के घर भले ही सम्पन्नता की हंसी न थी किन्तु दुख से संतप्त हृदयों को शान्ति अवश्य प्राप्त होती थी। कामारपुकुर की प्राकृतिक छटा में शुद्ध पवन से लहलहाते हरे-भरे खेतों की हरियाली, नदी का शान्त, गम्भीर, विरामहीन, निश्छल प्रवाह, नील गगन में कतार बांध-कर मधुर गीत गाते उड़ने वाले पंछियों के कलरवगान करते दृश्य उसके एकाग्रचित्त तन्मयता की हिलोरों में हलचल पैदा कर अपनी ओर आकर्षित किये वगैर न रहते।

"जब तक घंटी की ध्वनि सुनी जा सकती है तब तक वह आकार की सीमा के भीतर है, किन्तु जब उसे नहीं सुना जा सकता, तब वह निराकार हो जाती है। इसी प्रकार ईश्वर साकार भी है और निराकार भी।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

सन् 1842 के जून-जुलाई में केवल 6 वर्ष की आयु में घटित गांव की घटना को स्वयम् रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को इस प्रकार सुनाया— "कमारपुकुर में परिजन बहुधा अपने बच्चों को मुरमुरा (चावल भूनकर मूढ़ी बनती है) देते हैं जिसे वे टोकरी में रखते हैं अथवा गरीब होने पर कपड़े के छोर में बांध लेते हैं और खेतों के किनारे वाली सड़कों पर खेलने निकल जाते हैं।

मैं एक दिन टोकरी में मुरमुरे रख खेत की मुंडेर से चला जा रहा था कि अचानक मेरी नजर आसमान पर पड़ी। मैंने देखा काले-काले मेघों ने आकाश को आच्छादित कर लिया है और उनके सामने दूध से सफेद बगुलों का समूह अपने सुन्दर श्वेत पंखों को फैलाये स्वतन्त्र रूप से उड़ा जा रहा है। यह मनोहरणीय दृश्य विविध रंगों की विषमता लिये इतना सुन्दर

लगा कि मैं अपने शरीर और सांसारिक विषयों से ज्ञान-मुक्त मुद्रा में तन्मयता से मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ा। ऐसी दशा देख मेरे सहयोगी गांव से माता-पिता को बुला लाये जो उसी हालत में घर उठा ले गये। चेतना आने पर पिताजी को मैंने बतलाया कि मुझे कोई मूर्छा रोग नहीं हुआ, मेरा मन किसी सुदूर देश में चला गया था। मेरे संज्ञाहीन होने पर मुरमुरे चारों ओर मेंड़ पर ही बिखर गये किन्तु मुझे उस समय अत्यन्त आनन्द मिला। भाव में पूरी तरह चेतनाहीन होने का यह मेरा प्रथम अवसर था।"

इसी प्रकार की घटनायें बचपन में दो बार और घटीं। रामकृष्ण पहली बार ग्राम की महिलाओं के साथ जब देवपूजन देखने गये और दूसरी बार तब, जब वे शिव जी बने शिवरात्रि के दिन गांव की एक नौटंकी में अभिनय कर रहे थे।

"कमरे में शताब्दियों का अंधकार वहां एक दीपक के लाने मात्र से चला जाता है। उसी प्रकार अनन्त जन्मों का संचित अज्ञान तथा पाप ईश्वर के एक कृपाकटाक्ष से ही दूर हो जाता है।''

—श्री रामकृष्ण परमहंस

शाला के प्रति गदाधर की अरुचि बढ़ने लगी, क्योंकि वह छोटे-छोटे बालकों को अभिनय कला में दीक्षित कर उनके साथ निकट की अमराई में नाटक खेलना अधिक पसन्द करता, जिसका प्रिय विषय होता श्रीकृष्ण चरित्र की विभिन्न लीलायें। वह गौरवर्ण दीर्घ केशधारी बालक गले में माला और ओठों पर वंशी धारण कर स्वयम् श्रीकृष्ण का अभिनय करके उनकी कथाओं में निहित भाव-संवेगों में आत्मविभोर हो समाधि में डूब जाता। इस प्रकार अध्ययन, कक्षा की पुस्तकों से बाहर निकल रामायण, महाभारत, पुराण तथा अन्य ग्रंथों के भीतर प्रविष्ट हो ईश्वरीय लीलाओं में वह आकंठ डूबने लगा जिसके फलस्वरूप अधिकाधिक आध्यात्मिक उद्दीपना उनमें प्रकट होने लगी।

इन आचरणों से माता-पिता के मन में नाना प्रकार की शंकायें जन्मीं किन्तु वे ईश्वर-इच्छा समझ मौन रहने पर विवश थे।

इसी बीच सेलामपुर से उन्हें अपने भांजे रामचांद वन्द्योपाध्याय का

निमन्त्रण प्राप्त हुआ कि शारदीय दुर्गापूजन के अवसर पर आयोजन में पधारें। क्षुदिराम जी का स्वास्थ्य अजीर्ण एवं संग्रहणी रोग से ग्रस्त था, किन्तु उन्हें अकेले ही जाने की इच्छा जागृत हुई।

रामचांद मेदनीपुर में काम करते थे लेकिन सेलामपुर में पैतृक निवास होने के कारण प्रतिवर्ष दुर्गापूजन आयोजन भवन में आठ दिन लगातार चलता जिसमें ब्राह्मण-भोज, पंडितों की विदाई, दरिद्रों को वस्त्रदान के अनुष्ठान सहित संगीत तथा वाद्य-ध्वनियों की गूंज गांव में अपार आनंद प्रवाहित किया करती। इस अवसर पर मामा को समय पर निमन्त्रण प्राप्त हो और वे न पहुंचें, यह अच्छा नहीं लगा था।

सप्तमी और अष्टमी का पूजन क्षुदिराम ने प्रसन्नतापूर्वक कर लिया किन्तु नवमी पूजन को उनका स्वास्थ्य अचानक गम्भीर हो गया। दिन गया, रात बीती किन्तु दशमी के प्रातः उनकी दशा और शोचनीय थी। इतने दुर्बल कि बोलना कष्टप्रद हुआ। दोपहर बाद दुर्गा प्रतिमा विसर्जन के बाद रामचांद मामा की दशा देख उनका मौन तोड़ने के लिए बोले—"मामाजी, आप सदैव 'रघुवीर-रघुवीर' उच्चारण किया करते हैं, आज चुप क्यों हैं ?" क्षुदिराम ने रघुवीर शब्द सुन आंखें खोल कर पूछा—"कौन, रामचांद ! प्रतिमा विसर्जन कर आये ? मुझे उठाकर बिठा दो।"

हेमांगिनी और रामकुमार की सहायता से उन्होंने शय्या पर उठाकर बिठाया। उनके मुख से तभी गम्भीर कम्पित स्वर निकल कमरे में गूंज उठे—"रघुवीर, रघुवीर, रघुवीर" और तत्काल पुनः रघुवीर का नामोच्चारण करते हुए प्राणपखेरू उड़ गये।

दूसरे दिन कामारपुकुर में उनकी मृत्यु का समाचार आग की तरह फैलते ही गांव के लोग दुख के सागर में डूब गये।

"जीव ही शिव है (सब जीवित प्राणी भगवान हैं)। उन पर दया-प्रदर्शन का दुःसाहस कौन कर सकता है ? दया नहीं, परन्तु सेवा; मनुष्य की सेवा ही भगवान की सेवा है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

पिता के निधन का आघात गदाधर के मन में बड़ा परिवर्तन लेकर आया। भौतिक जीवन की असारता और स्नेही पिता का अभाव उसे खलने

लगा। आम्र कुंजों की छाया में श्मशान के निकट विचारों में डूबा वह घंटों गुजार देता किन्तु मां के दु:खभरे जीवन के प्रति कर्त्तव्य विमुख होना नहीं चाहता था।

एक दिन चन्द्रादेवी पुत्र को शरीर में भस्म लगाये रमते साधु जैसा कोपीन पहने अपने निकट खड़ा देख अचम्भे से मन में बड़ी दुखी हुई। साधुओं का सत्संग उसे आनन्ददायक और रुचिकर लगा इसलिए वह लाहा परिवार द्वारा बनी धर्मशाला, जिसमें साधुओं के ठहरने की व्यवस्था थी, उनकी शास्त्रचर्चा सुनने पहुंच जाता। इसी आचरण ने एक दिन उसे समाधि के लिए भी अग्रसर किया।

"समस्त सम्प्रदाय एक ही पूर्ण सत्य के अंश व अंगभूत हैं और समस्त साधनाओं का लक्ष्य अपने-अपने भिन्न पथों द्वारा उसी एक परम अनुभव को प्राप्त करना है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

जहां गदाधर नौ वर्ष के हुए उनका यज्ञोपवीत करा दिया गया। उन्होंने इस संस्कार के अवसर पर ब्राह्मण परिवार की परम्पराओं की प्रथा तोड़ कर धनी लुहारिन से ही प्रथम भिक्षा प्राप्त की जिसने प्रार्थना की थी कि पहली भिक्षा वह उसी से ग्रहण करें और इस घटना से शूद्रा स्त्री को दिये वचन का पालन करना गदाधर की आध्यात्मिक क्षमता, दूरदर्शिता और प्रेमभक्ति की आस्था की जड़ें सामाजिक बन्धनों की अपेक्षा कितनी गहरी थीं, प्रदर्शित करती हैं।

जब उनकी उम्र मात्र 10 वर्ष की थी, स्थानीय जमींदार के यहां एकत्रित विद्वान पंडितों के किसी सूक्ष्म विषय पर होने वाले वाद-विवाद को बड़े ध्यान से सुनते हुए गदाधर ने उनके विवादित प्रश्नों के ऐसे सुसंगत और समीचीन उत्तर दिये जिन्हें सुन उपस्थित सभी दर्शकों और पंडितगणों को बालक के चातुर्य्य और विवेकपूर्ण समाधान से हतप्रभ कर डाला था। इस घटना से ग्रामवासियों के सामने पहली बार उन्होंने एक गुरु के रूप में दर्शन दिये जो अल्प आयु में भी मानसिक परिपक्वता का बेजोड़ उदाहरण की तरह प्रकट हुए थे। चूंकि समस्त पदार्थों के बीच ही रामकृष्ण भगवान के सुन्दर रूप को देखते थे। शिशु काल से ही वे संगीत और

काव्य के प्रति अनुरक्त थे। शिवरात्रि के दिन शिव का अभिनय करते हुए उनके शरीर में शिव ने प्रवेश किया। उनके कपोलों पर हर्षाश्रुओं की अविरल धार बहने लगी, क्योंकि देव-महिमा में स्वयम् की सुधबुध खो वे संज्ञाहीन हो गये थे।

पिता की मृत्यु के बाद गृहस्थी का तमाम भार रामकुमार पर आ पड़ा था। दूसरी ओर गदाधर का बढ़ता वैराग्य भी परिवार के लिए चिन्ता का विषय था; लेकिन दुर्भाग्य ने अचानक एक नया मोड़ जीवन में दिखाया जब रामकुमार की पत्नी एक छोटे शिशु को छोड़ कालकवलित हो गई। चन्द्रादेवी अत्याशित रूप से प्रभावित हुईं।

कर्ज का सिर पर बोझ और आर्थिक दुर्बलताओं से व्यथित रामकुमार गांव छोड़ कलकत्ते पहुंचे। शहर के बीच कामारपुकुर में एक संस्कृत पाठ-शाला धनोपार्जन के लिए खोल डाली। जैसे-जैसे समय बीतता गया, गदाधर के मन में पंडिताऊ विद्या के प्रति उदासीनता और विमुखता की भावना अधिक गहरी होती गई।

वह यह अवश्य सोचने लगा कि उसका जीवन किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुआ है जिसकी जानकारी भले ही अभी उसे नहीं है। भिक्षा का पात्र लेकर भगवान के नाम पर सांसारिक सुखों का त्याग करने की बड़ी इच्छा मन में उठती, लेकिन अपनी असहाय स्नेहमयी मां और भाइयों की असहनीय पीड़ाजनक दशा का स्मरण उसके मार्ग की वाधा बन जाते। पर मन में अटल विश्वास था कि भगवान ही उन्हें सही मार्ग-दर्शन करा सकते हैं।

"भगवान सब मनुष्यों में हैं, परन्तु सब मनुष्य भगवान में नहीं हैं। यही कारण है जिससे कि वे कष्ट भोगते हैं।"

"जिस समय भगवत्-दर्शन की अग्नि नश्वर शरीर रूपी घर में प्रवेश करती है, तो वह पहले काम, क्रोध आदि रिपुओं का नाश करती है, फिर अहंकार को दग्ध करती है और अन्त में वह सब वस्तुओं को स्वाहा कर देती है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

कलकत्ते में रामकुमार को अकेले सभी व्यवस्थाओं को जुटाने में

कठनाई होने और गदाधर का विरक्ति भाव देख उन्होंने प्रस्ताव किया कि भाई कलकत्ते रह कर कुछ हाथ बंटायें तो श्रेयकर रहेगा। वहीं पढ़ाई भी हो सकेगी। गदाधर ने शीघ्र उनकी सलाह मान ली और रघुवीर का अशीर्वाद प्राप्त कर 1853 में कलकत्ते के लिए रवाना हो गये। रामकुमार पाठशाला की पढ़ाई के अतिरिक्त पुरोहिती भी करते। गदाधर की यहां भी पढ़ाई में अरुचि देख रामकुमार ने जब डांटा तो स्पष्ट शब्दों में उन्होंने उत्तर दिया—"भैया, मेरी इच्छा रोटी कमाने की विद्या सीखने में कतई नहीं है। मुझे ऐसी विद्या चाहिए जो मेरे हृदय के अन्धकार को दूर कर जीवन को प्रकाशवान करे तथा जिसे पाकर व्यक्ति हमेशा के लिए तृप्त हो जाये।" कनिष्ठ भाई का उत्तर सुन रामकुमार निराश और चकित भी हुए किन्तु मौन साध लिया।

"परमात्मा की उपलब्धि की जा सकती है। उसे उसी प्रकार देखा जा सकता है और उसके साथ उसी तरह बातें भी की जा सकती हैं जिस प्रकार मैं तुम्हें देख रहा हूं और तुमसे बातें कर रहा हूं। परन्तु कौन ऐसा करने का कष्ट उठाता है? मनुष्य, स्त्री, बच्चे और अन्य सभी प्राणी सांसारिक पदार्थों के लिए आंसू बहाते हैं, परन्तु ईश्वर के प्रेम के लिए कब कौन रोता है? किन्तु यदि कोई सचमुच ही उसके लिए रोता है तो वह अवश्य उसे दर्शन देगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

एक शूद्र जाति की महिला ने कलकत्ते से लगभग 4 मील की दूरी पर गंगा के पूर्वीय तट पर दक्षिणेश्वर में काली महादेवी के मन्दिर का निर्माण कराया। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि कोई ब्राह्मण पुजारी श्रद्धापूर्वक उस मन्दिर का कार्य सम्हाले। किन्तु धर्मभीरु भारत देश में उस समय साधु-संन्यासियों के प्रति जनसाधारण के मन में अपार श्रद्धा भाव होने पर भी वेतनभोगी पुरोहित मिलना कठिन था, क्योंकि ऐसा दायित्व निर्वाह करने पर ब्राह्मण को जातिच्युत हो जाने का भय था।

रामकुमार ने 1855 में उस साधनसम्पन्न महिला की प्रार्थना स्वीकारी और पुरोहित का पद-भार ग्रहण कर साहस का परिचय दिया।

चार

दक्षिणेश्वर मन्दिर की काली मां

"मां, आदिमतम दिव्य शक्ति है। वह सर्वव्यापक है। वह समस्त दृश्य जगत के अन्दर व वाहर विद्यमान है। वह जगत की जननी है और यह जगत अपने हृदय में उसे धारण किये हुए है। वह मकड़ी है और यह जगत वह जाल है जिसे कि उसने स्वयं बुना है। मकड़ी अपने अन्दर से तार को बाहर निकालती है, और उससे अपने चारों तरफ जाल का निर्माण करती है। मेरी मां, एक साथ ही घृता एवं धारिणी है। वही छिलका है और वही गूदा है।"

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

विधवा रानी रासमणि ने 1847 में लगभग 7½ लाख रुपयों की प्रचुर धनराशि व्यय कर काली मन्दिर का निर्माण करवाया था। आयताकार फर्शीनुमा अहाते के बीचोंबीच काली मां की प्रतिमा-प्रतिष्ठापन 31 मई सन् 1855 में की गई जिसके बाजू में राधाकृष्ण मन्दिर का निर्माण करवाया। इसमें द्वादश शिव मन्दिरों के बीच चांदनी के भीतर से गंगाघाट जाने का सीधा रास्ता है। मन्दिरों के निकट ही एक बड़ा नाट्य मन्दिर, दो नौबतखाने तथा पास ही रानी के परिजनों और मन्दिर के कर्मचारियों के निवासस्थानों की भी पूर्ण व्यवस्था की गई। वहीं दो पुष्करिणियों से युक्त एक सुन्दर उद्यान लगा था जहां एक विशाल वटवृक्ष भी था जिसने श्री रामकृष्ण के जीवन में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

साधनसम्पन्न रासमणि बड़ी ही व्याकुल और निराश थीं क्योंकि कोई भी रूढ़िवादी ब्राह्मण को शूद्रा (कवट), जाति की रानी द्वारा निर्मित मन्दिर का पुरोहित बनना तथा प्रसाद ग्रहण करना स्वीकार नहीं था। सुविख्यात पंडितों की राय ली गई जिसमें मात्र रामकुमार ने इस विकट समस्या के समाधान के लिए रानी को सुझाव दिया कि वे काली मन्दिर के संचालन हेतु उचित अर्थ-व्यवस्था कर किसी ब्राह्मण को मन्दिर दान कर दें। ऐसी स्थिति में किसी ब्राह्मण का मन्दिर में पुजारी का कार्य करना तथा उस पर चढ़ाये भोग को ग्रहण करना आपत्तिजनक न होकर शास्त्रानुकूल भी होगा। रानी को समस्या समाधान का मार्ग मिला तो उसने रामकुमार जी को ही पुजारी का कार्यभार सम्हालने पर राजी कर लिया।

मन्दिर समर्पण कार्य बड़ी धूमधाम से किया गया और थोड़े दिनों के उपरान्त ही गदाधर भी भाई के पास उनकी सहायता के लिए पहुंच गये। गदाधर को उद्यान मन्दिर का मनोहरणीय शान्त वातावरण अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए अत्यन्त अनुकूल लगा। रानी के दामाद मथुर बाबू ने गदाधर के प्रति आकृष्ट हो उन्हें काली की प्रतिमा को सायंकाल मूल्यवान आभूषणादि से सुसज्जित करने तथा प्रातःकाल पत्र-पुष्प-चन्दनादि से संवारने-सजाने का कार्य सौंपा गया। वे संतुष्ट थे।

"काली—जिसे तुम ब्रह्म कहते हो, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। काली आदिशक्ति है। जब वह निष्क्रिय होती है तब हम उसे ब्रह्म कहते हैं (यह उसका शब्दार्थ है···) परन्तु जब वह सर्जन. रक्षण व संहार का कार्य करती है तब हम उसे शक्ति या काली कहते हैं। जिसे तुम ब्रह्म कहते हो तथा जिसे मैं काली कहता हूँ, ये दोनों एक-दूसरे से उसी प्रकार अभिन्न हैं जिस प्रकार अग्नि व उसका दहन-कार्य। यदि तुम एक का चिन्तन करते हो तो स्वभावतः ही दूसरे का भी स्वयं चिन्तन हो जाता है। काली को स्वीकारना ब्रह्म को स्वीकारना है, और ब्रह्म को स्वीकार करना काली को स्वीकार करना है। ब्रह्म और उसकी शक्ति अभिन्न है। इसे ही मैं शक्ति या काली कहता हूँ।"

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

काली मां के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा बढ़ती गई, क्योंकि उनके चरणों में बैठ कर वे देवी को भजन गाकर रिझाते और मन्त्रमुग्ध हो उसी में मन रमाने की चेष्टा करने लगे।

इसी बीच रामकुमार का भानजा हृदयराम भी उसी काली मन्दिर में आ गया और इस प्रकार गदाधर को अपार आनन्द का अनुभव हुआ। हृदय से गदाधर अपने मन की सभी बातें खाली समय में कर अपने दुख-दर्द में विश्वासपात्र मान कर सहयोगी समझता। अचानक काली मन्दिर में एक दुर्घटना घटी। राधाकान्त मन्दिर का पुजारी श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति को शयनकक्ष में ले जा रहा था। असावधानी से उसका पैर फिसला और वह मूर्ति सहित भूमि पर गिर पड़ा। प्रतिमा अंगभंग हो गई—एक पैर उसका टूट गया था। चारों ओर शोर मच गया। पुजारी को तत्काल मन्दिर से पदच्युत कर दिया गया।

"मां ने आत्मा की पतंग को ऊपर उड़ा रखा है। वह परमानन्द में उड़ रही है। यह संसार मां की क्रीड़ाभूमि है। उसकी इच्छा होने पर वह हजारों पतंगों में से एक-दो पतंगों को ही माया की डोरी से मुक्त कर देती है। यह उसका खेल है। वह आंख की झपक के साथ विश्वासपूर्वक मानवात्मा को कहती है—'जब तक मैं तुम्हें और कुछ करने का आदेश नहीं करूं, तब तक तुम इस संसार में जाकर रहो!' " —श्री रामकृष्ण परमहंस

पंडितों की सभा हुई जिसमें रानी और मधुर बाबू को उन्होंने सलाह दी कि खंडित प्रतिमा गंगा में विसर्जित कर दी जाये और उस भग्न प्रतिमा के स्थान पर नई प्रतिमा ही प्रतिष्ठित की जाये क्योंकि टूटी प्रतिमा से ईश्वर की पूजा करना शास्त्रानुकूल ही नहीं धर्मविरुद्ध है। विद्वानों की राय से रासमणि के संतुष्ट न होने के कारण उन्होंने गदाधर की राय जाननी चाही।

गदाधर ने सभी पंडितों की सलाह ध्यानपूर्वक सुनने के उपरान्त अपना मत साहसपूर्वक दिया—"पंडितों के निर्णय से मैं सहमत नहीं हूं। क्या उनके जमाई बाबू का पैर टूट जाने पर उस पैर का त्याग कराना पसन्द करेंगी या उसके उचित इलाज की व्यवस्था करायेंगी? यहां पर

भी ऐसे ही क्यों न किया जाये ? खंडित प्रतिमा को फिर से सुधारा जाये, तदुपरान्त यथावत् प्रतिमा की पूजा में कोई हानि नहीं है।"

विद्वान पंडितों के समूह को तरुण पुजारी की बात पहले तो नहीं जंची किन्तु बाद में रानी के स्वीकार करने पर उसी सलाह को स्वीकारते हुए सभी अवाक् रह गये, जब रानी रासमणि और मथुर बाबू ने प्रशंसा कर उनकी सलाह का आदर किया।

उस भग्न प्रतिमा के टूटे पैर को गदाधर ने इतनी चतुराई से जोड़ा कि बारीकी से जांच करने पर भी यह बताना कठिन था कि मूर्तिकार ने उसे कहां से जोड़ा है।

इस अभूतपूर्व निर्णय से उन्हें राधाकान्त मन्दिर का पुजारी बना दिया गया और हृदयराम को रामकुमार की सहायता के लिए काली मां की प्रतिमा को सजाने और संवारने के काम में जुटाया गया।

वहां भगवत-प्रेम में उन्मत्त असंख्यों तीर्थयात्रियों के समूह में हिन्दू, मुसलमान, साधु-संन्यासी, फकीर दरवेश के रूप में दर्शनों के लिए पांच गुम्बज वाले विशाल मन्दिर में भी श्रद्धावश आते ही रहते।

उद्यान के निकट एक वटवृक्ष के पास चार अन्य वृक्ष गदाधर की इच्छानुसार लगा कर उस स्थान को पंचवटी बना दिया गया जिसमें पीपल, बेल, आंवला और अशोक के पवित्र पौधे भी थे। राधाकान्त के मन्दिर की ऊंचाई काली मन्दिर से कुछ छोटी है। समस्त विश्व को सांकेतिक मूर्ति रूप देने की यहां चेष्टा की गई है—स्वर्ग व मृत्युलोक की शून्यता को व्याप्त करने वाली त्रिशक्ति, प्रकृति माता (काली), परमपुरुष (शिव), और प्रेम (राधाकृष्ण) को अंकित किया था।

साधारण आत्माएं संसार को शिक्षा देने का दायित्व अपने ऊपर लेने से डरती हैं। एक क्षुद्र तिनका अपने आप तैर सकता है, परन्तु यदि कोई पक्षी उसके ऊपर बैठ जाता है तो वह तत्काल डूब जाता है। परन्तु नरेन्द्र भिन्न प्रकार की वस्तु है। वह एक महान वृक्ष के तने के सदृश है, जो गंगा के वक्ष पर मनुष्यों और पशुओं को अपने ऊपर लाद कर पार ले जाता है।"

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

काले पत्थर से बनी अधिष्ठात्री देवी काली, शिव की भूलुण्ठित देह पर नृत्य करती हुई है, वामहस्तों में से एक में तलवार थी और दूसरे में छिन्न मुंड और उसके दो दक्षिण करों में से एक में प्रसाद और दूसरे में 'मां भैः' की वराभय मुद्रा थी। वह महाप्रकृति सर्वशक्तिदायिनी जननी और प्रलयंकारी दोनों ही है। वह अपनी सन्तानों की विभिन्न रूपों व अवतारों में आत्मप्रकाश करती है। उसी काली मां के श्रीचरणों में संमोहित मुद्रा में बैठ उसने अपनी सुध-बुध खो दी।

पांच

दिव्य जगन्माता दर्शन

"शून्य पात्र में जल भरते हुए भकभक आवाज होती है, परन्तु जब पात्र भर जाता है, कोई आवाज सुनाई नहीं देती। जिस मनुष्य ने भगवान् को नहीं पाया वह केवल भगवान की सत्ता और उसके प्रयोजन को लेकर निरर्थक तर्क करता रहता है; परन्तु जिसने पा लिया वह मौन रहकर ही दिव्य आनन्द का भोग करता है।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

गदाधर की एकान्तप्रियता और संसार के प्रति बढ़ती चिन्ता के कारण भाई रामकुमार की इच्छा हुई कि वे उन्हें काली-पूजा के विधिवत् ज्ञान और पूजा-अनुष्ठान में निष्णात करें जिससे वह सारा कार्य कुशलता-पूर्वक कर पायें। कारण यह भी था कि शक्ति या काली-पूजा बगैर दीक्षा लिए शास्त्रसम्मत और उचित नहीं थी। इसलिए उन्हें कलकत्ते के अनुभवी साधक ब्राह्मण श्री केनाराम भट्टाचार्य की शिष्यता में भक्ति और साधना के लिए दीक्षा ग्रहण करने भेजा गया। देवीपूजा और चण्डीपाठ की शिक्षा वह पहले ही प्राप्त कर चुके थे। शक्ति के उपासक केनाराम भट्टाचार्य ने जब उन्हें दीक्षित करने के लिए पवित्र मंत्रों का उच्चारण प्रारम्भ किया तो गदाधर आत्मविभोर हो गहरे ध्यानमग्न हो आध्यात्मिक भाव में समाधिस्थ हो गये। उनकी असाधारण भक्ति से मुग्ध हो गुरु ने उन्हें इष्ट-प्राप्ति के विषय में हार्दिक आशीर्वाद प्रदान किया। यह देख गुरु

को अत्यन्त आश्चर्य और रोमांच भी हुआ।

रामकुमार वृद्ध होने के कारण अस्वस्थ भी रहते थे इसलिए उन्होंने गदाधर को ही जगन्माता की पूजा विधिवत् करने की सलाह दी और स्वयम् राधागोविन्द की पूजा करने में व्यस्त रहे। इस प्रकार जब काली-पूजा का स्वतन्त्र और स्थायी भार उन्हें सौंप दिया गया तो जलवायु परिवर्तन के लिए रामकुमार की इच्छा कामारपुकुर जाने की हुई। मथुर बाबू से कह कर उन्होंने हृदयराम को श्रीराधागोविन्द जी की पूजा में नियुक्त करा दिया और स्वयम् कार्यवश पहले कलकत्ते के उत्तर दिशा स्थित 'श्यामनगर मूलांजोड़' नामक स्थान पर केवल दो-चार दिनों के लिए ही अवकाश पर चले गये। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि उनकी घर जाने की अन्तिम इच्छा पूर्ण नहीं होगी और वे फिर कलकत्ता वापिस ही नहीं लौट पायेंगे। श्यामनगर मूलाजोड़ में अचानक वे बहुत ही अस्वस्थ हो गये और उनका निधन हो गया। गदाधर के हृदय पर अप्रत्याशित आघात पहुंचा जबकि वे स्वयम् ही जगत की नश्वरता की तीव्र खोज में व्याकुल हो भगवान को पाने के लिए क्षणभंगुर विषय-भोगों की दलदल से दूर काली मां के श्रीचरणों में समर्पित थे।

"मनुष्य के अन्दर निवास करने वाले भगवान को जब तक कोई व्यक्ति प्रेम नहीं करता, तब तक वह मनुष्य को भी सच्चे अर्थों में प्रेम नहीं कर सकता, और इसीलिए उसकी सहायता भी उसके द्वारा सम्भव नहीं। और इससे यह स्वाभाविक सत्य परिणाम भी निकलता है कि जब तक कोई व्यक्ति प्रत्येक मनुष्य में भगवान के दर्शन नहीं करता, तब तक वह वास्तव में भगवान को नहीं जान सकता।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

उन्होंने काली मां की जड़ प्रतिमा को मन में साकार रूप से प्रतिष्ठित किया जो साक्षात् जगज्जननी थी। वह चमत्कारी देवी बनारसी साड़ी तथा सिर से पैर तक बहुमूल्य अलंकारों से आभूषित रहती। वह गले में मुंडमाला, करों में स्वर्ण निर्मित नर-हस्तों की करधनी भी पहिने रहती। नीचे के बायें हाथ में सोने से बना छिन्न नरमुंड वह धारण किये थी और ऊपर के हाथ में जिसके खड्ग था। नीचे का हाथ जिसका स्नेह-

पूर्वक भक्तों को वरदान देता और ऊपर का हाथ संसार को अभय-दान का प्रतीक दृष्टिगोचर हो रहा था। ऐसी तेजस्वी काली मां ठीक प्रकृति की भांति बारी-बारी से सृष्टि की रचना और विध्वंसकारी प्रलय भी समयानुकूल प्रदान करती है—वह मां आनन्दमयी और भयंकरा दोनों ही है। उसी प्रलयंकारिणी देवी की आराधना में वे नतमस्तक थे। वह काली मां उनके लिए सदैव ही प्रेममयी जननी, आनन्द, शक्ति, माधुर्य एवं ममता की आगार थी जो अपने भक्तों को विपदाओं से मुक्त कर, उलझनों और अंधकारपूर्ण झंझावातों में सच्ची पथ-प्रदर्शक होती है।

जीवन और मृत्यु का नाटक इस संसार में आखिर कैसे होता है, कौन करता है,इसका सूत्रधार कौन है ?—इन्हीं प्रश्नों के सटीक उत्तर गदाधर के हृदय को झकझोर रहे थे। समाधान की खोज में वे संसारी लोगों की संगति त्याग श्री मां की समाधि में व्यस्त रहने लगे। पितृतुल्य अग्रज रामकुमार की मृत्यु से वे दुखी थे।

रात को लोग जब सो जाते तो वे उठकर पंचवटी के निकट जंगलों में प्रविष्ट हो जगन्माता के चिन्तन और साधना में लीन हो जाते। आंखें, जगने से सूज गईं जैसे वे रात-भर रोये हों। मां के दर्शन न पाने पर शिशु की भांति वे रुदन करने लगते "मां, मुझे दर्शन दो, तुम कहां हो ? रामप्रताप ने तेरी कृपा और दर्शन पाये, मेरी भी सुध ले ! क्या मुझे तुम इतना अधम समझती हो जो मेरे सम्मुख आने में असमर्थ हो, मेरे निकट नहीं आतीं ? मैं सुख, सम्पत्ति, बन्धु और सांसारिक भोग कुछ भी नहीं चाहता, मां ! ···केवल तेरे दर्शन चाहता हूं। बस, एक बार मुझे दर्शन दो !"

"सूर्य संसार को प्रकाशित करता है, पर बादल का एक छोटा-सा टुकड़ा भी उसे हमारी नजर से ओझल कर देता है। उसी प्रकार माया का तुच्छ-सा आवरण भी हमें सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी, सच्चिदानन्द को नहीं देखने देता।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

मन्दिर में घण्टे-घड़ियालों का स्वर और शंखनाद आकाश में गूंज उनका ध्यान तोड़ता तो दिवस के अवसान का संकेत पा हृदय अधीर हो अथाह पीड़ा से घनीभूत हो जाता तो वे क्रन्दन करने लगते, "मां ! एक दिन और

व्यतीत होकर व्यर्थ चला गया लेकिन तेरे दर्शन प्राप्त नहीं कर पाया। इस क्षणभंगुर जीवन का एक दिन-रात्रि और बीत गयी और मैं अधम सत्य के मूल रूप को नहीं जान पाया !"

एक दिन हृदयराम ने जंगलों में प्रवेश करते समय उनका पीछा किया। कब्रिस्तान को लांघते रात के गहन अंधकार को चीरते वे बढ़े जा रहे थे। जहां लोग भूतप्रेत बाधा के भय से जंगली वृक्षलताओं की कन्दराओं के निकट न जाते, वे आंवले के वृक्ष तले समाधि लगाये बैठे थे। उसने डराने के निमित्त दूर से चारों ओर ढेले फेंके, किन्तु वे मौन अपलक समाधिस्थ रहे। हृदयराम के जंगल में रात बिताने के संदर्भ में जानकारी लेने पर वे हंसकर बोले—"वहां, आंवले का वृक्ष है, उसी के नीचे बैठकर मैं ईश्वर का ध्यान करता हूं। मां के दर्शन नहीं हो रहे। शास्त्र में लिखा है कि आंवले के वृक्ष के नीचे बैठकर मनोकामना की सिद्धि का ध्यान करने पर, उनकी मनोवांछित कामना पूर्ण होती है।"

कुछ दिन के पश्चात् हृदयराम ने पुनः उनका पीछा किया। आधी रात गये उन्हें उसने आंवले के वृक्ष के नीचे अपने पहनने के वस्त्र और यज्ञोपवीत त्याग निर्वसन, आनन्दपूर्वक ध्यानमग्न देखा तो सोचा, मामा जी, पागल हो गये हैं। ध्यान करना ही है करें, नंगे होने की आवश्यकता क्या है ? यह सोच निकट पहुंच कर साहस बटोर उसने प्रश्न किया—"मामा जी, यह क्या हो रहा है ? यज्ञोपवीत और वस्त्रों को त्याग कर नंगे क्यों बैठे हो ?"

"अहम् की पूर्ण चेतना को विलुप्त न होने दो, परम-निरपेक्ष सत्ता के साथ एकत्व सम्पादन मत करो। किन्तु यह अनुभव करो कि वह विश्वात्मा जिसके बीच विश्व के अनन्त रूप जन्म ग्रहण करते हैं, वह तुम्हारे अन्दर विद्यमान है; जीवन के प्रत्येक मुहूर्त में तुम उसका दर्शन करते हुए विश्व का कल्याण करो।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

समाधि टूटने पर समीप खड़े हृदयराम को हंस कर उन्होंने उत्तर दिया—"तुझे क्या पता है ? इसी प्रकार 'पाश मुक्त' होकर ध्यान करना चाहिए। मनुष्य जन्म से ही घृणा, भय, लज्जा, कुल, शील, मान, जाति

और अभिमान—इन आठ पाशों में आबद्ध है और यह यज्ञोपवीत भी। 'मैं ब्राह्मण तथा सर्वश्रेष्ठ हूं'—इस प्रकार अभिमान का चिह्न होने के कारण यह भी एक पाश है, बन्धन है। मां को पुकारने के लिए इन सभी पाशों को त्याग कर एकाग्रता के साथ पुकारना पड़ता है। इसीलिए मैं निर्वसन हूं, ध्यान करने के पश्चात् मन्दिर लौटते समय इन्हें पुनः धारण कर लूंगा।"

हृदयराम ने कभी ऐसी बातें किसी से न सुनी थीं अतः निरुत्तर हो मौन, मामा की रोमांचकारी कल्पना सुन अवाक् रह गया।

इतना ही नहीं समस्त जीवों में शिवज्ञान दृढ़ करने के लिए काली मन्दिर में भिखारियों को भोजन के बाद उनके जूठे अन्न को देवता का प्रसाद मान कर उन्होंने आनन्दपूर्वक भोजन किया, अपने मस्तक पर धारण किया। उनकी जूठी पत्तलों को माथे पर रख, स्थान को अपने हाथों झाड़ू से पोंछ, गंगातट पर स्वयम् फेंकने पहुंचे, यह सोच कि इस शरीर से देव-सेवा करके कृतार्थ हुआ।

अपने श्रीमुख से पूजन के उपरान्त प्रतिदिन रामप्रसाद आदि सिद्ध-साधकों-भक्तों के पदों को गाकर देवी को सुनाते-सुनाते इतने तन्मय और भावविह्वल हो उठते कि बार-बार उन्हें यह कहे जाने पर भी कि आरती का समय हो गया है, उनसे समय पर आरती उतारना सम्भव नहीं होता। मस्तक पर फूल रख देवी-पूजा में दो घण्टे निरंतर स्थाणु की तरह निश्चल ध्यानमग्न बैठे रहते। अन्नादि का भोग जब भी लगाते तो पर्याप्त समय इसी चिन्तन में गुजार देते कि, मां भोजन कर रही हैं। पुष्प-चयन, माला और शृंगार भी वे कई घण्टों में करते।

"याद रखो! जड़ न चेतन सभी भूतों में ईश्वर का वास है। इसीलिए प्रत्येक वस्तु सम्मान के योग्य है।...तथापि मनुष्यों से सम्बन्ध स्थापित करते समय हमें यह देखना चाहिए कि हम साधु पुरुषों की ही संगति करें, दुष्टों की नहीं। यह ठीक है कि ईश्वर व्याघ्र के अन्दर भी विद्यमान हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम व्याघ्र को अपने आलिंगन-पाश में बांधकर हृदय से लगा लें।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

मथुर बाबू रासमणि से सन्तुष्ट मुद्रा में कहते—"हमें अद्भुत पुजारी

मिला है, काली मां देवी सम्भवत: शीघ्र ही जागृत होंगी।"

इधर गदाधर की हार्दिक अनुरक्ति और व्याकुलता इतनी तीव्र हुई कि उनके आहार, निद्रा आदि की गति शनै:-शनै: कम होती चली गई। शरीर का रक्त-प्रवाह वक्षस्थल तथा मस्तिष्क में तीव्रगति से दौड़ने के कारण वक्षस्थल सदा ही आरक्त रहने लगा। अश्रुपूरित नेत्रों में एक ही ललक और जिज्ञासा बलवती रहती—"क्या करूं, कैसे करूं, मां के दर्शन कहां करूं ?"

कुछ लोग उनके आचरणों से उन्हें पागल कहते, कुछ मजाक उड़ाते, कुछ ढोंगी मानते, किन्तु कुछ उनके अनुराग, दृढ़ संकल्प, साधना और त्याग के प्रति आदर, सम्मान तथा श्रद्धाभाव रखकर उनकी ओर आकर्षित हो मन से ही श्रद्धासुमन चढ़ा रहे थे।

मथुर बाबू और रानी रासमणि युवा पुजारी की ईश्वरोन्मत्तता और अविकल भाव-तन्मयता से पूरी तरह सन्तुष्ट और आकर्षित थे, जिन्होंने अपनी सारी शक्ति स्वनिर्धारित लक्ष्य-प्राप्ति के लिए मां के चरणों में समर्पित कर दी थी। अन्त में एक दिन उनकी साधना पूर्ण हुई जब उनकी शारीरिक सहनशीलता सीमा को लांघ गई और तब उनके सामने का आवरण उठ गया। उन्होंने जगन्माता के दर्शन किस प्रकार पाये, अपने शिष्यों को इस प्रकार वर्णन किया है—

"मां के दर्शन लाभ न पा सकने के कारण हृदय में असहनीय यंत्रणा अनुभव हुई जैसे कोई मुझे भीगे गमछे की तरह निचोड़े डाल रहा हो। भंयकर बेचैनी और आशंका होती कि मां के दर्शन होंगे अथवा नहीं, क्योंकि मां का वियोग सहनशक्ति से बाहर हो चला था। यह जीवन निरर्थक और उद्देश्यहीन लगा।

"मेरी दृष्टि सहसा मां के मन्दिर में टंगे खड्‌ग पर गई। उसे एकटक निहारते हुए अपने जीवन का अंत करने के उद्देश्य से उसकी ओर पागल की तरह झपटा और लपक कर उसे उठाया ही था कि अचानक कृपामयी मां मेरे सम्मुख प्रकट हो गयीं और मैं अचेतावस्था में संज्ञाविहीन हो भूमि पर गिर पड़ा।"

"भगवान् जिस प्रकार मनुष्य के अन्दर अपने आपको प्रकट

करते हैं, उस प्रकार अन्य किसी पदार्थ में नहीं करते। परन्तु अन्य पदार्थों में भी कमोबेश उनकी शक्ति का प्रकाश विद्यमान है। मनुष्य के अन्दर प्रकट होकर भगवान् ने रक्त-मांस में अपनी शक्ति का सबसे अधिक प्रकाश किया है।···मनुष्य भगवान का सर्वोत्कृष्ट प्रकाश है।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

"उसके बाद क्या हुआ, वह दिन कब और कैसे बीता और अगला दिन कहां गुजरा, मुझे कोई जानकारी नहीं। वास्तविकता यह कि मैंने अपने भीतर विशुद्ध आनन्द के अनवरत प्रवाह को बहते अनुभव किया जो मेरे लिए अभिनव था चूंकि मैं अपने में जगन्माता की साक्षात् उपस्थिति का आभास प्राप्त कर चुका था।"

जगन्माता के प्रथम दर्शन के बाद उनकी चिन्मय मूर्ति के दर्शन निमित्त हृदय में विश्रान्त क्रन्दन युक्त ध्वनि का प्रादुर्भाव हुआ जो बाह्यत: प्रकट न होते हुए भी अन्तर में निरन्तर विद्यमान रहती। यह भावाविष्टि तीव्र होने पर पर वे, "मां···मां, मुझ पर कृपा करो, मुझे दर्शन दो!" चीत्कारते हुए रोने लगते।

लोगों का समूह एकत्रित हो ऐसे अशान्त आचरण को देखते मुंह फेर लेते, किन्तु उनके मन में लेशमात्र भी लज्जा या संकोच के चिह्न चेहरे पर न उभरते। उनके सम्मुख तो मां की वराभयकरा चिन्मय-मूर्ति ही दर्शन देती। उन्हें आभास होता—वे हंस रहीं है, बातें कर रही हैं और नाना प्रकार की बातें कर सान्त्वना सहित शिक्षा प्रदान कर रही हैं। कुछ ही दिनों बाद उनकी दृष्टि-भंगिमा ही बदल गई।

"ओ मनुष्य! युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जा, रणसज्जा से सज्जित होकर मृत्यु तेरे घर पर चढ़ाई कर रही है। विश्वास के रथ में बैठ जाओ, ज्ञान का तूणीर धारण करो। और शक्तिशाली प्रेम के धनुष को खींचकर मां के नाम के दिव्य बाणों की वर्षा करो।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

वे एक शिशु की तरह आचरण करने लगे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि मां अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कौतुक रचकर अपने को छुपाये रखती हैं इसीलिए वे इच्छानुसार दर्शन नहीं कर पाते।

उनका आत्मसमर्पण व्यर्थ क्यों है, व्यथित हृदय दिन-रात प्रार्थना में लीन हो कहता—"ओ मां! मैंने तुम्हारी शरण ली है। तू ही मुझे सिखा, मैं क्या करूं, क्या बोलूं, कहां जाऊं? यही सच है कि सर्वत्र तेरी ही इच्छा सर्वोपरि है और तेरी सन्तानों के लिए कल्याणकारी है। मेरी इच्छाओं को, मेरे अंहकार को अपनी इच्छा में लीन कर मुझे अपना यंत्र बना ले।"

ज्यों-ज्यों यह आत्मानुभूति तीव्र हुई, मां का दर्शन तेजोमय होता गया।

जिस प्रस्तर की काली मां की प्रतिमा को चेतनायुक्त अनुभव वे पहले करते अब वह प्रतिमा अदृश्य होकर वहां दिखती। सहास्यवदना, वराभयदायिनी प्रत्यक्ष चिन्मयी मां!

"जब तुम्हें संसार में भेजा गया है तो तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है? सब कुछ उन्हें समर्पित कर दो, उनके शरणागत हो जाओ। तुम्हें और कोई कष्ट नहीं रहेगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

इस सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"वास्तव में, मैं उसकी सांस अपने हाथों पर अनुभव करता। रात में प्रकाशित कक्ष में दीवालों पर उसके दिव्य रूप की छाया दृष्टिगोचर न होती। अपने कमरे में बैठे उन्हें आभास होता कि वह बालिका के पैरों में बंधे पायल की तरह रुनझुन करती ध्वनि-सी मन्दिर की ऊपरी मंजिल से आती हुई सुनाई पड़ती। कहीं भूल न हुई हो, ऐसा विचार आते ही मुड़ कर जब पीछे देखता तो वह अपने केश लहराती मुद्रा में मंजिल की छत पर खड़ी दिखती। वह कभी कलकत्ते की ओर तो कभी गंगा की ओर निहारती मिलती।

हृदयराम ने मामा के संदर्भ में बताया कि उनके पूजा करने की विधि शास्त्रविपरीत, मानसिक असंतुलन से प्रभावित लगती।

"यदि तुम पूरी आन्तरिकता के साथ अच्छे और पवित्र होने की कोशिश करोगे, तो ईश्वर तुम्हारे पास सद्गुरु भेज देंगे। आवश्यकता है मात्र आन्तरिकता की।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

वे हाथ में फूल व बेलपत्र ले पहले अपने सिर, वक्ष, पूरे शरीर और पैरों को छुआते और फिर उन्हें काली मां के चरणों में चढ़ाते। अपने आरक्त नेत्र और वक्ष लिए मतवाले की भांति आसन से लड़खड़ाते उठते। देवी के सिंहासन के निकट पहुंच लाड़ से चिबुक स्पर्श कर प्रतिमा को हाथ में उठा गाते, बोलते, हंसते, विनोद करते और नाचने लगते। भोजन का कौर उठा देवी की जीभ में रख खाने के लिए प्रार्थना करते।

छह

ईश्वरोन्मादी आचरण

"एक नमक की पुतली समुद्र की गहराई को मापने के विचार से, हाथ में एक मापने की यष्टिका लेकर समुद्र के किनारे पहुँची। जब वह समुद्र के जल के किनारे पहुँची, उसने विशाल समुद्र की ओर देखा—तब वह एक नमक की पुतली ही तो थी। परन्तु यदि वह केवल एक कदम भी और आगे बढ़ाती, और वह समुद्र के अन्दर अपना पैर रख देती, तो निश्चित ही वह समुद्र में विलीन हो जाती। वह नमक की पुतली, समुद्र की गहराई को हमें बतलाने के लिए कभी भी वापिस लौटकर नहीं आती।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

नदी की जलधारा के समान तरुण पुजारी का भावविनिमय निरवच्छिन्न रूप से मां के साथ एकाकार होने में इधर लगा था और दूसरी ओर लोगों को भय था कि मथुर बाबू व रासमणि उनके आचरणों से क्रुद्ध हो पदच्युत किये बगैर न रहेंगे।

एक दिन गुप्त रूप से चर्चा को अपनी आंखों से स्वयं देखने के लिए अपने कक्ष में बैठ पुजारी की पूजाविधि निरीक्षण कर ही रहे थे तभी यकायक मथुर बाबू ने उन्हें शिव के रूप में एक तरफ से आते हुए देखा और दूसरी तरफ से जाते हुए। उन्होंने मां काली के रूप में उनके दर्शन किये। वे चीत्कार कर अवाक् रह गये। उपरोक्त घटना से लोगों की यह धारणा

कि वे पागल हो गये हैं, निर्मूल लगी । मथुर बाबू को विश्वास हो गया कि मन्दिर के निर्माण और उसकी व्यवस्था का उद्देश्य सफल हो गया है। दूसरे दिन ही वहां के व्यवस्थापक को आदेश दिया गया कि पुजारी जी अपनी विधि से ही पूजा करने के लिए स्वतंत्र हैं, किसी को इस संदर्भ में टोकने या हस्तक्षेप करने की चेष्टा न की जाये ।

और तब रानी रासमणि भी उनके प्रति आकृष्ट हो गईं जब उन्होंने समझ लिया कि गदाधर का विचित्र आचरण मानसिक विश्रृंखलता का परिणाम नहीं वरन् यह भक्तिप्रेम की परिपक्वता है ।

श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों से स्वयम् अपनी समाधि की चर्चा इस प्रकार की है—"पूजा और सन्ध्या शास्त्रीय विधि से करते समय मेरा चिन्तन भीतर के पाप पुरुष को दग्धता की स्थिति में पाने का रहता कि सचमुच शरीर में पाप पुरुष विद्यमान है और उसे विनष्ट किया जा सकता है। साधना-समय जब शरीर में बहुधा जलन का आभास हुआ तो सोचा मुझे रोग हो गया है। अनेक चिकित्सा से लाभ तो न हुआ किन्तु साधना भी नित्यप्रति ही होती।

एक दिन पंचवटी में बैठा मैं विचारमग्न था कि एक घोर श्यामवर्ण भीषणाकृति पुरुष सम्भवतः मदमस्त मुद्रा में लड़खड़ाता (अपने शरीर को दिखाकर) मेरे सम्मुख भीतर से निकल कर टहलने लगा। कुछ क्षणों पश्चात् एक और सौम्यमूर्ति पुरुष गेरुए वस्त्र और हाथ में त्रिशूल धारण किये उसी प्रकार शरीर के भीतर से निकला और उस दैत्याकार पुरुष पर आक्रमण कर बलपूर्वक उसे मार डाला। इस प्रकार मुझे छह मास से शरीर पर होने वाले असहनीय गात्र-दाह से मुक्ति मिल गई।"

रानी रासमणि भी सहज में समझ गईं कि ऐसे पवित्र और निष्काम साधक के सदृश श्री जगदम्बा की कृपा पाना सम्भव है, असम्भव नहीं।

"भगवान एक माली के समान कीमती गुलाब के पौधे की जड़ों को चारों तरफ से खोदते हैं ताकि वह भली भांति रात्रि की ओस का पान कर सके। इसी प्रकार बीमारी, तुम्हारी जड़ों के चारों तरफ की मिट्टी को खोद रही है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

जब एक दिन वे दक्षिणेश्वर आईं, गंगा में स्नान कर पूजा-अर्चना के लिए स्वयं पहुंचीं। श्री जगदम्बा को प्रणाम कर रानी मूर्ति के समीप ही बैठते हुए कुछ पद गाकर गदाधर से सुनाने का आग्रह किया। भक्तहृदय से संगीत-लहरी प्रवाहित होने लगी और स्वर्गिक आनन्द के वातावरण से मन गद्गद होने लगा।

इसी बीच रानी किसी मुकदमे के सम्बन्ध में कुछ सोचने लगीं। पुजारी ने रानी को अन्यमनस्क मुद्रा में देख भक्तिपूर्ण पदों का गान रोक, उनको भर्त्सना भरे स्वर में कहा—"यहां भी सांसारिक विचारों का तानाबना ···यहां भी संसार के विचार···!" कहते-कहते उनके मुंह पर दो तमाचे मार दिए।

आसपास खड़े कर्मचारी इधर-उधर दौड़े। देवालय में हलचल मच गई जब लोग पुजारी को मारने दौड़े। रामकृष्ण शान्त रहे और रानी मौन देखती रह गईं। तभी नम्रतावश वह बोलीं—"भट्टाचार्य का अपराध कुछ नहीं, उनको कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। मैं दोषी थी। तुम लोग नहीं जानते, जगन्माता ने मुझे स्वयम दंड देकर मेरा हृदय प्रदीप्त कर दिया है!"

"यदि तुम्हारा प्रेम ईश्वर के प्रति उतना ही तीव्र हो जितना विषयी का सांसारिक विषयों के प्रति, तो तुम्हें ईश्वर के अवश्य दर्शन होंगे।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

पर इस घटना से मथुर बाबू को संदेह हुआ कि रामकृष्ण मानसिक व्यधिग्रस्त हैं और कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्य कविराज गंगाप्रसाद सेन उनकी चिकित्सा करें। कुछ दिनों इलाज चला, कोई लाभ न देख वैद्यराज बोले—"यह रोग नहीं ईश्वरोन्माद है, इसकी औषधि से चिकित्सा सम्भव नहीं। साधक स्वयम् चिकित्सक है।"

मथुर बाबू ने उन्हें स्नेहवश परामर्श दिया कि वे अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर जीवन को निश्चित प्रणाली में ढालने का प्रयास करें। ज्यों-ज्यों मथुर बाबू उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था करने के लिए निकट आये, वे स्वयम् उन्हीं के हो गये और मन से गुरुरूप में देखने लगे।

जब दोनों के बीच आपसी विश्वास और आस्था पनपी तो एक दिन

गदाधर ने बड़े ही निश्छल भाव से अपने दिव्य दर्शनों की घटना पर उनकी राय जाननी चाही। उन्होंने एक सरल स्वभाव के शिशु-सा आचरण और अद्भुत भाव परख निश्चय किया कि उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता है। उनकी यथाशक्ति सेवा करना परम सौभाग्य का विषय होगा और इसीलिए अपने जीवन के चौदह वर्षों तक तन, मन, धन से समर्पित हो उन्हीं के द्वारा संरक्षित एवं निर्देशित होते रहे।

मथुर बाबू को लगा कि ईश्वर के विभिन्न रूपों के प्रति उनके हृदय में कोई भेद-भाव नहीं है। सत्य के पक्ष पर अंधविश्वास नहीं वरन् उन्होंने सत्य को परखने की प्रबल अनुभूति पाई। तब तक वे पूर्ण निष्ठा से अविचलित हो किसी कर्म का पीछा न छोड़ते जब तक स्वयम् सत्य के मूल पक्ष को न खोज लेते। उन्हें अब ईश्वरावतार के रूप में पूजित श्रीरामचन्द्र जी के दर्शनों की प्रबल लालसा जागी थी।

वे अपने निष्ठापूर्ण सेवक-सेव्य भाव जीवन में उतारते हुए इस भावना से अग्रसर हुए जैसे हनुमान जी की श्रीराम के चरणों के प्रति मन में तीव्र आस्था थी।

रामकृष्ण साधना में यथाशक्ति निरन्तर जुटे रहे जिसके परिणामस्वरूप जब वे पंचवटी के आसन पर विराजमान थे, एक दिन उन्हें अभूतपूर्व दर्शनों का लाभ मिल गया।

प्रसन्नमयी मुद्रा में उनकी ओर निहारती एक सुन्दर ज्योतिर्मयी रमणी उत्तर दिशा से निकट आती प्रतीत हुई थी।

"संसारी लोगों की बुद्धि कभी ठिकाने नहीं लगती, भले ही उन्हें भीषण कष्ट और कटु अनुभव सहने पड़ें। ऊंटों को कंटीली झाड़ियां बड़ी प्रिय होती हैं। वे उसे जितना खाते हैं, मुंह से उतना ही रक्त निकल जाता है, पर फिर भी वे उसे खाना नहीं छोड़ पाते।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

क्षणिक आभास हुआ कि सम्भवतः वह सीता हैं जो आजीवन राम के प्रति आस्थावान रहीं। वही धीमे-धीमे आगे बढ़ती उनके शरीर में प्रवेश कर गईं और अपनी मृदुल मुस्कान उनके ओठों पर छितरा दी जो उत्तराधिकार के रूप में उनके चेहरे पर सदैव बनी रही। इस प्रकार

उनका हृदय अपूर्व आनन्द से गद्गद हो उठा चूंकि उनकी साधना की परि-समाप्ति श्रीराम-दर्शन के रूप में हुई।

श्री मथुर बाबू ने देखा वाटिका के लाल जवा-पुष्प के वृक्ष में श्वेत जवा-पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं।

इस अवधि में उन्होंने हठयोग का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया, किन्तु उनके परिणाम देख वे लोगों को इसे न करने की सलाह देते—"ऐसे साधनों से कलयुग में जीव अल्प आयु तथा अन्नगत प्राण होने के कारण नियमों के व्यतिक्रम होने पर साधकों की मृत्यु तक हो सकती है।"

"जिस प्रकार एक लड़का किसी खूंटे या खम्भे को पकड़े चारों ओर तेजी से घूमता है, उसके गिरने का कोई भय नहीं रहता, उसी प्रकार ईश्वर को दृढ़ता से पकड़कर अपने सांसारिक कामों को करो, तो निश्चय ही भय से तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

"इसी तरह स्त्री-पुरुों के वियोग सरीखी व्याकुलता तथा उसके अभाव जैसी पीड़ा, ईश्वर के निमित्त केवल 24 घण्टे हृदय में स्थायी रखने पर भी ईश्वर-दर्शन अवश्य होंगे।"

चाचाजी के पुत्र हलधारी को पुत्र-शोक हो जाने के कारण मन में यह धारणा जागृत हुई कि काली-मूर्ति तमोगुणमयी (तामसी) होने के कारण आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं हो सकती। रामकृष्ण देव को उनकी बात सुन बड़ा दुःख हुआ और अश्रुपूर्ण नेत्रों से काली मन्दिर में श्री जगन्माता के चरणों में गिर कर पूछा—"मां, हलधारी शास्त्रज्ञ विद्वान तुम्हें तमोगुणमयी बताता है, क्या तू ऐसी है?" कुछ क्षण मौन समाधि में रह उन्होंने हलधारी से कहा—"मां तो त्रिगुणमयी तथा शुद्ध सत्वगुण-मयी हैं।"

रामकृष्ण का स्पर्श तथा कथन सुन मानो हलधारी के हृदय की अन्तर्दृष्टि खुल गई। उन्होंने कहा, "यह अद्भुत घटना है—काली मन्दिर में ज्योति··· रामकृष्ण के जब स्वर मेरे कानों में पड़े साक्षात् ईश्वर का प्रकाश मुझे दिखाई देने लगा। मैं कुछ भी नहीं समझ पाया मुझे क्या हो गया था?"

रामाकृष्ण कहते हैं कि मुझे मां ने उस समय 'रति की मां' नामक महिला का वेष धारण कर कहा—"तू भावमुखी रह।"

एक दिन रात के लगभग आठ बजे उनके तालू में खुजलाहट-सी प्रतीत हुई। कुछ ही देर में उससे खून बहने लगा। उक्त घटना स्वयम् उन्होंने इस प्रकार वर्णन की—"रक्त का रंग सेम के पत्ते जैसा काला था और इतना गाढ़ा कि कुछ अंश नीचे गिरने के बाद शेष दांतों से लार की तरह मुंह से बाहर लटकने लगा। कपड़े की सहायता से मुंह बन्द कर खून रोकने की चेष्टा विफल होने पर भयभीत हो गया। लोगों को ज्ञात होने

> "यदि कोई व्यक्ति महल में राजा का पता लगाना चाहे, तो उसे महल में जाना होगा, सारी ड्योढ़ियां नापनी होंगी। पर यदि वह पहली ही ड्योढ़ी में प्रवेश कर चिल्लाने लगे—'राजा कहा है?' तो वह उन्हें नहीं पा सकता। उसे सातों ड्योढ़ियां पार करनी होंगी और तभी वह राजा को देख सकेगा।"
>
> —श्री रामकृष्ण परमहंस

पर सभी दौड़े आये जिसमें एक प्राचीन विज्ञ साधु ने जांच कर समझाया—"...कोई डर नहीं है, "खून का बाहर बह जाना ही श्रेयकर हुआ। लगता है योगासन में हठयोग की चरम दशा में जड़ समाधि में ही यह दशा होती है। सुषुम्ना के द्वार खुलने में शरीर का खून मस्तिष्क पर चढ़ रहा था। मस्तक पर न चढ़ मुंह के रास्ते अपने आप मार्ग बना कर निकल गया, अच्छा हुआ। क्योंकि जड़ समाधि कभी भंग नहीं होती। तुम्हारे शरीर से जगन्माता को कोई महान कार्य कराना है, इसी से प्राण-रक्षा हुई है।"

इस प्रकार की समाधियों और कठिन तपस्याओं के दौर निरंतर चलते रहे। हलधारी जो उनके स्थान पर कार्यरत रहे वे प्रतिदिन पंचवटी के नीचे अपने हाथों से ही रसोई बनाकर खाते थे। शास्त्रविरोधी न होने पर भी देवी के लिए पशु-बलि चढ़ाने की प्रवृत्ति उनकी नहीं होती और इसी प्रथा के प्रचलन के कारण वे आनन्दपूर्वक पूजन नहीं कर पाते थे। लगभग एक माह तक क्षुब्ध हृदय से पूजन कराने के पश्चात् उनकी मान्यता थी कि ईश्वर मानवीय बुद्धि के परे है। एक दिन जब वे सन्ध्या

में बैठे तो उन्होंने देवी की मूर्ति को भयंकर रूप धारण किये प्रत्यक्ष देखा। वह उनसे कहती हुई लगी—"तू मेरा पूजन करना छोड़ दे अन्यथा सेवापराध से तेरी सन्तान की मृत्यु हो जाएगी।" तभी ध्यान टूटा आंखें खुलीं।

पहले उन्होंने अपने मन की मानसिक कल्पना जान आदेश पर ध्यान दिये बग़ैर अवहेलना की, किन्तु कुछ दिनों के उपरान्त सचमुच उनके पुत्र की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण उन्होंने गदाधर से पूरी व्यथा आद्योपान्त सुना कर देवी-पूजन से क्षमायाचना कर ली। वे मात्र श्री राधागोविन्द जी का पूजन करने लगे और हृदयराम काली-पूजा कराते।

जीवन में भावाविष्ठ समाधि के संदर्भ में बाद में स्वयम् रामकृष्ण ने उन अनुभवों का स्मरण इन शब्दों में किया—"एक अवस्था पार करते ही दूसरी उसका स्थान ले लेती। सुध-बुध ऐसी खोती कि झंझावात में न जाने कहां चला जाता और शरीर पर कपड़े मुश्किल से ठहरते। जातिपांति का विचार मन से जाता रहा। पंचवटी में बैठा गहरे ध्यान में प्राय:

"सुहासी के भीतर यदि छोटा-सा भी छेद रहे, तो धीरे-धीरे सारा जल बह जाता है; उसी प्रकार यदि साधक के भीतर सांसारिकता का बोध लेशमात्र भी बाकी रहे, तो सारे प्रयास धूल में मिल जाते हैं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

डूबा रहता। ब्राह्य जगत की सारी चेतना शून्य हो शरीर जैसे निश्चल हो गया। उचित देख-भाल के अभाव में मेरे केशों की जटा बन गई। चिड़ियां उनमें बसेरा करतीं और पूजा के दौरान सिर पर चढ़ाये गये चावलों के कणों को इच्छानुसार चुगतीं। भोर के समय मेरे निश्चल शरीर पर साँप रेंगते रहते, पर न मैं ही इसे जान पाता और न सांप ही। ओह, कैसे-कैसे दर्शन इन नेत्रों के सम्मुख ही दिन-रात गुजरते गये! जब ध्यान में बैठता तो देखता एक संन्यासी त्रिशूल लिए मेरे शरीर से निकल कर अपने मन को सांसारिक विचारों से दूर रख एकाग्रचित्त साधना का आदेश देता। ऐसा न करने पर वह त्रिशूल मेरे शरीर में घोंपने की धमकी देता। दिन और रात के अधिकांश समय किसी न किसी रूप में मुझे मां के दर्शन

"मनुष्य इस संसार में ईश्वर लाभ के लिए ही पैदा हुआ है, इसे भूलकर मन को अन्य दूसरी वस्तुओं में लगाना उचित नहीं

है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

अवश्य होते रहते। तभी मैं अपने असहनीय दुःखों को भूल जाता। कभी मैं अपनी अंगुली आंखों में चुभाता कि पलकें बन्द क्यों नहीं होतीं, नींद क्यों नहीं आतीं। भयाक्रान्त मुद्रा में रोकर मां से प्रार्थना करने लगता—'मां, क्या तेरी आराधना करने, संसार त्याग कर सब कुछ तुझे सौंपने का परिणाम क्या यह ही निकलना है? तूने मुझे दर्शन दिये भी तो बीमारी लगा कर। चाहे यह शरीर टुकड़ों-टुकड़ों में विभक्त हो जाये पर मुझे तू न त्यागना। तू मुझे दर्शन दे, अपनी असहाय सन्तान पर कृपा करती रह। मैं तेरा शरणागत हूं, तू ही मात्र मेरी गति है।' तब आनन्दमयी मां मेरे सामने साक्षात् प्रकट हो मुझे अपनी कृपामयी स्नेहभरी वाणी से सान्त्वना देने लगतीं।"

उन्होंने अपने मन से धन के प्रति आसक्ति का पूर्ण त्याग कर दिया था। गंगा के तट बैठ एक हाथ में मिट्टी और दूसरे में रुपये रख, मन से उनका मूल्य आंकते हुए एक-दूसरे को परस्पर बदल कर स्वयम् से कहते —"धन के द्वारा अधिकाधिक सुखद जीवन में दान का सुअवसर तो प्राप्त हो सकता है, किन्तु भगवान के दर्शन और उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान की प्राप्ति ही सर्वश्रेष्ठ धन है। इस रुपये का इस मिट्टी से अधिक कोई उपयोग नहीं।" यह कह गंगा में मिट्टी और रुपया वे दान कर देते।

उनके त्यागमय जीवन के प्रथम चार वर्षों में एक समय ऐसा भी आया जब उनके मानसिक असंतुलन की चिंता से ग्रस्त रानी रासमणि और मथुर बाबू ने सोचा कि अखण्ड ब्रह्मचर्यपालन के कारण ही उनके मस्तिष्क में विकार आया है, और आध्यात्मिक व्याकुलता और अस्थिरता भी प्रकट होने लगी है। हो सकता है ब्रह्मचर्य के भंग होने पर पुनः स्वास्थ्य लाभ हो जाय। इस प्रेरणा के वशीभूत हो उन्होंने लक्ष्मीबाई आदि वेश्याओं द्वारा पहले दक्षिणेश्वर में तथा बाद में मेछुआ बाजार स्थित एक मकान में उन्हें आकर्षित और प्रलोभित कराने का असफल प्रयास किया।

"गहरे समुद्र में मोती हैं, किन्तु उन्हें पाने के लिए तुम्हें सब

प्रकार का जोखिम उठाना होगा। एक बार गोता लगाने मात्र से अगर मोती न मिलें तो यह निष्कर्ष न निकालो कि सागर में मोती ही नहीं हैं। बार-बार गोता लगाओ। अन्त में तुम्हें सफलता अवश्य हाथ लगेगी। यही बात संसार में भगवान को पाने की है। यदि तुम्हारी प्रथम चेष्टा विफल हो जाए तो निराश न होओ। अपने प्रयत्न में दृढ़ता से लगे रहो। अन्त में तुम्हें उनके दर्शन अवश्य होंगे ही।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उन नारियों में, ऐसी अवस्था में श्री जगन्माता के दर्शन कर उन्हें मां···मां···कहते-कहते वे समाधिमग्न हो गये। उनकी कामइन्द्रिय संकुचित हो कछुए के अंग के समान उनके शरीर के अन्दर सिकुड़ कर प्रविष्ट हो गई। यह देख उन कामुक नारियों के हृदय में पहले ग्लानि हुई और फिर उनके शिशु जैसे आचरण से मुग्ध हो उनमें वात्सल्य भाव जागृत हुआ। अश्रुपूरित नेत्रों से भयभीत मुद्रा में वे उनके चरणों में गिर कर लिपट गईं। उन्होंने प्रलोभनवश उनके ब्रह्मचर्य को खण्डित करने का जघन्य अपराध स्वीकार कर वे क्षमायाचना सहित बरम्बार प्रणाम करती वापिस लौट गईं।

तेईस वर्ष की आयु हो जाने के बाद भी समस्त सांसारिक विषय के प्रति दिन-प्रतिदिन उनकी उदासीनता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। कामारपुकुर से मां और भाई द्वारा गांव बुलाये जाने के समाचारों का उत्तर न मिलने पर लोग चिन्तित हो उठे। जब उन्हें उनके पागल होने का समाचार मिला तो रामेश्वर स्वयम् कलकत्ते आकर उन्हें कामारपुकुर ले गया जिससे वहां के ग्रामीण शान्त वातावरण में कुछ समय को शान्ति मिल सके। वे कामारपुकुर आ गये कलकत्ता नगरी छोड़ कर।

"केवल दो प्रकार के व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं—एक वे जिनका मन पांडित्यज्ञान से भाराक्रान्त नहीं है अर्थात् दूसरे से उधार लिये विचारों से ठूंसा हुआ नहीं है और दूसरे वे जिन्होंने समस्त शास्त्रों एवं विज्ञानों के अध्ययन के बाद भी यह अनुभव किया है—वे कुछ भो नहीं जानते।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

पर यहां भी ईश्वर-प्रेम में मतवाले पुजारी को अपनी स्नेहमयी जगन्माता की स्मृति भुलाये न भूलती और वे पुनः ध्यानमग्न मुद्रा में व्याकुलता की स्थिति में इधर-उधर छटपटाते कामारपुकुर के एक श्मशान में पहुंच दिन-रात पूजा और ध्यान में बिताने लगे।

मां के अनुरोध और रामेश्वर की प्रार्थना पर धीरे-धीरे कुछ महीने के पश्चात् उनका मानसिक तनाव तो कुछ कम हुआ और कामारपुकुर के शान्त वातावरण से सहज ही मानसिक अवस्था को लाभ भी प्राप्त हुआ।

यह वृद्धा मां के लिए बड़े संतोष और प्रसन्नता की अनुभूति थी अतः उसने सम्बन्धियों की सहायता से उनको गृहस्थी में बांधने का निश्चय कर वधू की उचित तलाश की गयी। किन्तु इनकी मानसिक अवस्था की चर्चा पहले से ही उड़ जाने के कारण कहीं भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

परिजनों को उदास और निराश देख उन्होंने एक दिन अर्धचेतनावस्था में अचानक कहा—"इधर-उधर समय नष्ट कर वधू की तलाश व्यर्थ है, जयराम बाटी (कामारपुकुर से मात्र तीन मील की दूरी पर स्थित एक गांव) में चेष्टा करो। वहीं, रामचन्द्र मुखोपाध्याय के यहां मेरे लिए विधाता ने पात्री निश्चित की है।"

यह भविष्यवाणी बड़ी सही और सार्थक सिद्ध हुई, किन्तु बालिका की उम्र मात्र पांच वर्ष कुछ महीने ही थी। कहा जाता है इस बालिका के पिता को तीन सौ रुपये देने पड़े।

"क्या तुम भगवान को ढूंढ़ते हो ? तो उसे मनुष्यों में ढूंढ़ो, अन्य पदार्थों की अपेक्षा मनुष्य के अन्दर ही देवत्व का सबसे अधिक निवास है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

चन्द्रादेवी के समक्ष उसी बालिका के साथ विवाह करने के अतिरिक्त दूसरी उपयुक्त वधू प्राप्त भी नहीं हुई। विवाहोपरान्त कामारपुकुर में डेढ़ वर्ष ही रहे, किन्तु इस बीच उन्होंने समय पर भोजन लिया और व्यवहार में भी सरलता-सहजता का संचार होते ही अन्य मनुष्यों के समान वे अब सामान्य दिखने लगे।

सरलहृदय धर्मपरायणा चन्द्रादेवी ने अपने समधी की संतुष्टि के

लिए जमींदार लाहा बाबुओं के परिवार से जेवर मांग कर विवाह में चढ़ाये थे। कुछ दिन बाद जेवरों की वापिसी के समय मां को विशेष चिंता हुई। पुत्रवधू से उन्हें किस प्रकार वापिस मांगे जिसे सजा कर बहू घर लाई गई? उसके हृदय को चिंतातुर देख गदाधर ने स्वयम् ही रात को सोई हुई पत्नी के शरीर से कुशलता से आभूषण उतार लिये कि प्रातः नींद से उठने पर अबोध बालिका ने सास से प्रश्न किया—"मां, मैंने जो गहने पहने थे वे कहां गये?" समधी को पता चलने पर वह अपनी बेटी को क्रोधवश ले गया।

वास्तविकता यह है कि जब चेष्टाओं का अन्त होता है तभी वेदना के बीच से आत्मा की विजय होती है। अनुष्ठानों के बीच यह पाया गया कि उनके अंग-प्रत्यंगों के संधिस्थल पत्थर की तरह कठोर हो गये हैं। दैहिक चेष्टायें रुक जातीं और भोजन करना भी बन्द कर देते, पलकों की गति रुक कर स्थिर हो जाती और सारा शरीर आग के समान जलने लगता।

वे सभी मनुष्यों में भी देवता के दर्शन करने लगते जैसे स्वयिम् भगवान रूप हो गए हों। कहना अतिशयोक्ति नहीं कि उनका पागलपन और बुद्धि—देवता और मनुष्य दोनों के ऊपर समान अधिकार जमा चुकी थी।

वे सरल हृदय के, दम्भी या दुराग्रही नहीं थे। जिस प्रकार फल के द्वारा वृक्ष की उपयोगिता प्रकट होती है—उसी प्रकार उनका बाल-विवाह विशुद्ध और निष्काम प्रेम था।

"तुम जैसा चाहो उनको प्रार्थना करो। वे तुम्हें अवश्य सुनेंगे, क्योंकि वे चींटी के पैरों की आवाज भी सुन लेते हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

पत्नी शारदामणि विवाह संस्कार के पश्चात् अपने मायके में लगातार आठ वर्षों की लम्बी अवधि तक रहीं और पति के दर्शनों से वंचित भी।

कामारपुकुर से स्वास्थ्य लाभ कर जब वे वापिस दक्षिणेश्वर मन्दिर पहुंचे तो लगता है मां काली उनकी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रही थीं।

रामकृष्ण के पुनः मन्दिर में प्रवेश करने पर भावोन्माद तूर्वापेक्षा तीव्रतर होता गया।

देवताओं की सेना ने जैसे उनके शरीर पर भयंकर आक्रमण ही कर दिया जिसके फलस्वरूप नैराश्य और उन्माद की अवस्था में ही उन्होंने जीवन के दो वर्ष और साधना में बिता डाले। और इसी बीच सन् 1861 में रानी रासमणि का भी देहान्त हो गया।

सात

पथप्रदर्शक तांत्रिक योगेश्वरी

"चाहे जिस पथ का भी अनुसरण करो, मुख्य सत्य के लिए तुम्हारी अभिलाषा है। भगवान तुम्हारे मन के गुप्त रहस्यों को जानते हैं, और जब तक तुम्हारा मन शुद्ध व सच्चा है तब तक यदि तुम गलत मार्ग का भी आश्रय लेते हो तो वह एक अत्यन्त सौम्य वस्तु है। वह स्वयं तुम्हें सत्य मार्ग की तरफ ले जायेंगे। यह सर्वविदित है कि कोई भी मार्ग पूर्ण नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसकी घड़ी ठीक समय दे रही है, परन्तु वास्तव में कोई भी ठीक समय नहीं बताती। तथापि इससे मनुष्यों के कार्य में कोई बाधा नहीं पहुंचती।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अब तक रामकृष्ण राम-भरोसे ही अपनी क्षमता संकुल आत्मा और दृढ़ संकल्प के सहारे अकेले ही आध्यात्मिक अभियान में इस मायावी संसार के अगाध समुद्र की भवरों भरे तूफानी लहरों से मोती निकालने का प्रयत्न कर रहे थे। कभी थक कर रुकने की इच्छा मन में नहीं जागी चूंकि विश्राम क्या है—सोचने का अवसर ही उन्हें नहीं मिला। लक्ष्य केवल भगवान तक पहुंचने का था। ये बाहर से भक्त थे किन्तु अन्दर से ज्ञान के समुद्र में गोते लगा रहे थे। उन्हें विदित था कि तीव्रता के एक विशेष शिविर पर पहुंचे बिना उत्कृष्ट प्रेम में ज्ञानोदय सम्भव नहीं, चूंकि

महान बुद्धि प्रेम को पीछे धकेल देती है। उनकी प्रतिदिन मां से केवल एक ही प्रार्थना थी—"ओ मां ! मुझे मनुष्यों का प्रेम दो, उन्हीं के संसर्ग में रहने दो। मुझे एक शुष्क और हृदयहीन तपस्वी न बनाना।"

हम जब तक अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे, अविद्या और मायाजाल से बाहर नहीं निकलेंगे, चारों दिशाओं में भटकेंगे।

बात सन् 1861 की है। एक दिन वह प्रातःकाल दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पश्चिम की ओर गंगा तटवर्ती उद्यान में माता की माला बनाने और पूजा के लिए फूल चुन रहे थे।

अचानक उन्होंने अनुभव किया कि बगुलतलाघाट पर गेरुआ वस्त्र धारिणी एक सुन्दर रमणी घाट की चांदनी की ओर आई। हृदय को कहा गया कि वह अपरिचित भैरवी को बुला लाये। थोड़ी देर बाद जब हृदय वापिस लौटा तो उन्होंने अपने सम्मुख अत्यन्त अल्पवयस्का एवं सौन्दर्यमयी लगभग चालीस वर्षीय प्रौढ़ा को देखा जिसके लम्बे केश चंचल लहरों की तरह बिखर कर शरीर के इर्द-गिर्द लहराते अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। निकट पहुंच बड़े आश्चर्य और आनन्द से प्रफुल्लित मुद्रा में सजल नेत्रों से उसने प्रश्न किया—"बाबा, तुम यहां हो, मैं कितने दिनों से तुम्हें ढूंढ़ने में व्यस्त थी, अभी तुम्हारा पता चला और आज मुझे मिल गये।"

श्री रामकृष्ण देव ने पूछा—"मां, मेरे बारे में तुम्हें सूचना कैसे और कहां से मिली ?"

"समाज में रहने वाले व्यक्ति को विशेषकर गृहस्थ को, दुष्टों से अपना बचाव करने के लिए फुफकारना चाहिए, पर साथ ही यह कोशिश करनी चाहिए कि दुष्टता का बदला दुष्टता से न हो।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

भैरवी बोली—'श्री जगदम्बा की कृपा से मुझे विदित हो चुका था कि मुझे तीन व्यक्तियों से मिलना है। दो (चन्द्र और गिरजा) से बंगाल में पहले ही मेरी भेंट हो चुकी है और सौभाग्य से आज यहां तुम मिल गये।"

भैरवी के निकट बैठे उन्होंने एक बालक की तरह अपने सरल हृदय से अपने शारीरिक विकार, गात्रदाह, अलौकिक दर्शन, बाह्य ज्ञान का

अनायास लोप होना और नींद न आने सम्बन्धी बातें कह प्रश्न करने लगे—"ऐसा मुझे क्यों होने लगा है, क्या मैं सचमुच पागल हो गया हूं ?"

उन दोनों में न जाने कितने दीर्घकाल से मां-पुत्र का अटूट बन्धन हो, इसी भावविह्वल मुद्रा में एक-दूसरे की मन की पीड़ा का आदान-प्रदान होता रहा।

अपने बारे में भैरवी ने भी सभी कुछ बतला दिया। भैरवी ने स्नेह-पूर्ण शब्दों में कहा—"बाबा, कौन तुम्हें पागल कहता है ? आपमें महा-भाव का उदय हुआ है। उदय के समय यही अवस्था श्रीमती राधिका और दूसरे श्री चैतन्य महाप्रभु की रही है। भक्तिशास्त्र इसका प्रमाण है। जिन लोगों ने मन से ईश्वर का स्मरण किया है उनकी यह दशा होगी।"

"बहुत कम लोग यह समझ पाते हैं कि मानव जीवन का उद्देश्य ही ईश्वर लाभ है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

भक्त को प्रेममार्ग से ही ज्ञान होता है। भैरवी स्वयम् साधना और धार्मिक अनुष्ठानों की महान ज्ञाता थी। अत: प्रत्येक विधा के संदर्भ में शास्त्रविधियों का सम्पूर्ण ज्ञान गदाधर को देने का वह निश्चय कर चुकी थी जिसके वे ही उस समय उचित उत्तराधिकारी थे।

भैरवी ने अपना नाम योगेश्वरी बताया। वह एक कुलीन ब्राह्मण परिवार की सम्भ्रान्त महिला थी और साथ ही विष्णु की उपासिका जो देश-विदेश भी घूमी।

उसने उनके शारीरिक स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दे मानसिक दुर्बलता के अंधकार से मुक्त किया। जिन रहस्यवादी उपलब्धियों के दुरूह विज्ञान को लोग शताब्दियों में अर्जित नहीं कर पाते हैं उसे गदाधर ने अपने सहज बोध से कुछ वर्षों में ही प्राप्त कर लिया। तान्त्रिक साधना के समस्त खतरनाक मोड़ों को सफलतापूर्वक बड़ी रुचि से हृदयंगम कर उन्होंने प्रेम द्वारा भगवान से मिलने के उन्नीसों भावों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया।

एक सप्ताह बाद ही काली मन्दिर के उत्तर की ओर भागीरथी के तटवर्ती देवमण्डल घाट पर योगेश्वरी निवास करने लगी थी चूंकि संसारी मनुष्यों के अज्ञानवश मिथ्या-प्रचार और अपवाद का शिकार होने से वह

दूर रहना ही पसन्द करती थी। लेकिन भैरवी नित्यप्रति कुछ समय निकाल श्री रामकृष्ण देव की साधना में सहयोग करती।

"मुंह से सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा उच्चारण करना सरल है, पर बाजे पर यह स्वर निकालना उतना सरल नहीं। उसी प्रकार धर्म की बातें करना सरल है, किन्तु उसे व्यवहार में लाना कठिन है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

भैरवी वात्सल्य रस के वशीभूत हो अपने हाथों से मक्खन लेती और उन्हें 'गोपाल' के सम्बोधन से पुकारा करती। रामकृष्ण भी बालक के समान दौड़े हुए दो मील की दूरी तय कर बड़े आनन्दपूर्वक निकट बैठ उसके हाथों से मक्खन खाते।

ब्राह्मणी असाधारण गुणवती के होने साथ ही रूपवती भी थी और जब वह लाल रंग की बनारसी रेशमी साड़ी तथा आभूषणों को धारण कर काली मन्दिर में उपस्थित होती तो उसके शरीर पर बिखरे लम्बे केश तथा भाव-विह्वल अवस्था को देख ऐसा आभास होता जैसे गोपाल के विरह में व्याकुल वह नन्दरानी यशोदा ही हैं। इतना ही नहीं, वह एकान्त जंगलों में अकेली ही खोई-खोई-सी लोगों को मिल जाया करती। कुछ लोगों के लिए वह आकर्षण का केन्द्र भी थी।

मथुर बाबू को भी भैरवी के चरित्र के सम्बन्ध में प्रायः सन्देह रहा करता था जैसी धारणा कि अन्य काम-कांचनासक्त संसारी मानवों के मन घर कर रही थी। मन्दिर से बाहर, एक दिन एकान्त में मथुर बाबू ने परिहास की मुद्रा में उससे प्रश्न किया—"भैरवी, सुनो, तुम्हारा भैरव कहां है ?" उस दिन वह दर्शन कर लौटी ही थी जब उसने कामासक्त शब्दों को सुना, किन्तु क्रोधित और संकोची भाव चेहरे पर न उभारे। उसने शान्त स्वभाव से एक बार मथुर बाबू को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक घूर कर देखा। तदुपरान्त मां के चरणों में शवरूप से लेटे महादेव की प्रतिमा की ओर अंगुली से इशारा कर मथुर बाबू को दिखाती हुई उपेक्षित भाव से मुंह मोड़ लिया।

"जो कुछ होता है सब ईश्वर की इच्छा से होता है। ऐसा दृढ़ विश्वास होने पर व्यक्ति उनके हाथों में केवल यंत्रमात्र हो

जाता है, तब वह इस जीवन में ही मुक्त हो जाता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

सन्दिग्ध हृदय वाले विषयी मथुर बाबू सहज में ही परास्त होने वाले न थे, उन्होंने वार्ता के क्रम को आगे बढ़ाते हुए कहा—"भैरवी ! लगता है वह भैरव तो अचल है।"

ब्राह्मणी ने गम्भीरता भरे स्वर में उत्तर दिया—"मैं यदि अचल को सचल बनाने में सक्षम नहीं तो मुझे भैरवी कौन कहेगा ?" उसके नेत्रों से ज्वाल जैसी निकलने लगी जिसके क्रोधित रूप में वह चंडी सरीखी लगी।

यह रूप देख मथुर बाबू लज्जित और संकुचित हो मौन और निरुत्तर हो गये और अंत में उसके भक्त हो गये।

"ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी जो इस जीवन में ईश्वर लाभ न कर पाए, उसका जीवन ही व्यर्थ है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

कभी जब भैरवी रामकृष्ण को तोतापुरी जी से निर्विकल्प समाधि-साधन के उपदेश में मग्न पाती तो वह कहती—"बाबा, उससे अधिक मेल-जोल, आना-जाना, घनिष्ठता बढ़ाना उचित नहीं, इनके मार्ग शुष्क हैं।"

लगता है ईश्वरभक्त साधक के प्रति अधिक सम्मान प्रदर्शित करने से भैरवी के हृदय में ईर्ष्या उदित होती कि वह सबसे श्रेष्ठ है उसी के निर्देश पर चलने वाले मनुष्य का कल्याण हो सकता है। रमता साधु और बहता पानी जैसे गन्दा नहीं होता वैसे ही भैरवी को अपनी दुर्बलता ज्ञात होने पर एक दिन दक्षिणेश्वर त्याग कहीं दूर चली गई।

काली मन्दिर त्यागने से पूर्व उसने चौंसठ मुख्य-मुख्य तंत्रोक्त और अन्य जितने भी साधन उपलब्ध थे उन्हें विधिवत् अनुष्ठान करा दिया था। वह रामकृष्ण के गांव कामारपुकुर में भी साथ रही थी।

"सिद्धियां विष्ठा की तरह हेय हैं। उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। साधना में संलग्न रहने पर स्वयं वे कभी-कभी अपने आप उपस्थित हो जाती हैं, किन्तु जो उधर ध्यान देते हैं, भगवान की ओर अग्रसर नहीं हो पाते।"

"अहंकार की वृद्धि से पाप बढ़ता है और उसके त्याग करने

पर पुण्य की प्राप्ति होती है। 'मैं' के मर जाने से ही सारा झंझट दूर हो जाता है।"

"अपने प्रियजनों को प्यार करते हुए शान्त व निर्दोष जीवन व्यतीत करो। अर्थात् उनके मधुर आवरण के बीच से भगवान के दर्शन करो, और उसका धन्यवाद करो।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

भैरवी ने पंडितों और विद्वानों की सभा में, जिसमें वैष्णव सम्प्रदाय के अनेक अग्रणी नेता, विचारक और तर्कशिरोमणि भी उपस्थित थे, यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की कि श्री रामकृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। दिन में वह तन्त्र-शास्त्रों में वर्णित विभिन्न दुर्लभ विधियों को एकान्त स्थानों पर सिद्ध करती और रात के समय रामकृष्ण को साधना में बिठाती। उसी कठिन तपस्या के फलस्वरूप वे एक दिन आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर पहुंचने में सफल हो पाये।

उनके सम्पर्क में एक वैष्णव भक्त जटाधारी भी आए जिनके इष्ट 'रामलला' अर्थात् बालक-राम थे जो भगवान राम के ज्योतिर्मय बालक के रूप में 'दर्शन' पा धन्य हो गये थे।

आठ

न्यांगटा गुरु - श्री तोतापुरी जी

"माली यह जानता है कि साधारण गुलाब के पौधे की किस प्रकार रक्षा की जाती है, और बसरा के गुलाब की परवरिश किस प्रकार की जाती है।

वह उसकी जड़ के चारों तरफ की मिट्टी खोदकर भुरभुरी बना देता है ताकि वह रात्रि की ओस का उपयोग कर सके। ओस गुलाब को ताजगी व शक्ति देती है।

इसी प्रकार भगवान रूपी माली जानता है कि तुम्हारे साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए। वह तुम्हारे चारों तरफ जड़ों तक खोद रहे हैं ताकि उनकी ओस तुम्हारी जड़ों तक पहुंच सके, तुम पवित्रतर बन सको तथा तुम्हारा कार्य भी बेहतर व चिरस्थायी हो सके।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

वेदान्त में एकमात्र अनन्य सत्ता के अतिरिक्त कुछ और नहीं है।

सन 1864 के अन्त में जब रामकृष्ण ने साकार भगवान पर विजय प्राप्त कर ली थी, उनके जीवन में एक अनन्य असाधारण वेदान्तिक महा-पंडित साधक ने प्रवेश किया जिनका नाम तोतापुरी था। उन्होंने 40 वर्षों तक परिव्राजक संन्यासी के रूप में कठिन तपस्या और साधना द्वारा सिद्धियां प्राप्त की थीं। जब वे दक्षिणेश्वर आए तो रामकृष्ण ने उन्हें

आकृष्ट किया।

रामकृष्ण एक क्षीणकाय व अत्यन्त कोमल स्वभाव के थे, जिनकी बोली घरेलू बंगला मगर तोतलापन लिए बड़ी आनन्ददायक थी। उनका कद छोटा, रंग भूरा, छोटी दाढ़ी, चेहरे पर सुन्दर विस्तृत काली आंखें प्रकाश से परिपूर्ण अर्धनिमीलित मुद्रा में प्रायः रहतीं, किन्तु वे अर्धमुदित अवस्था में भी दूर-दूर तक की गहरी और विशेष भावनाओं को भी पढ़ने में सक्षम थीं।

श्री तोतापुरी जी दिगम्बर थे इसलिए प्रायः नग्न ही रहते और लुधियाने के नागा सम्प्रदायवादी होने के नाते अग्नि की पूजा करते। हर समय अग्नि प्रज्वलित कर धूनी रमाकर आसन लगाते। उनका लम्बा-चौड़ा भीमकाय कद था जिनकी धरोहर मात्र एक लोटा, एक चिमटा, एक चादर और एक आसन था। चादर वे शरीर से लपेटे रहते। प्रतिदिन अपने लोटे और चिमटे को रगड़-मांज कर चमकीला ही रखते।

उन्होंने नर्मदा तट पर साधनारत रह निर्विकल्प समाधि-उपलब्धि की थी, क्योंकि सांसारिक सुख-दुख बचपन से ही त्याग कर वे जीवन्मुक्त हुए थे। अपने शेष जीवन तीर्थस्थानों में भ्रमण कर अनुभव प्राप्त करने में ही उन्होंने लगाया था। रामकृष्ण उन्हें सत्यान्वेषी साधक लगे जिनसे प्रभावित होकर उन्होंने पूछा—"क्या तुम वेदान्त-साधना सीखने के इच्छुक हो?…तुम मुझे उत्तम अधिकारी प्रतीत होते हो, क्या इच्छा है तुम्हारी?"

"यदि मैं इस कपड़े को अपने सामने पकड़ूं और ओट कर लूं तो तुम मुझे और नहीं देख पाओगे, जबकि मैं तुम्हारे इतने ही निकट हूं जितना कि पहले। इसी प्रकार यद्यपि ईश्वर अन्य वस्तुओं की अपेक्षा तुम्हारे अधिक निकट है, पर अहंकार के पर्दे के कारण उन्हें नहीं देख पाते।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

जटाजूटधारी दीर्घकाय नग्न संन्यासी के प्रश्न का उत्तर रामकृष्ण ने बड़ी सरलता से दिया—"सीखने के संदर्भ में, मैं कुछ नहीं जानता, मेरी मां ही जानें। उनके आदेश मिलने पर ही कुछ कह सकता हूं।"

"ठीक है, अपनी मां से परामर्श कर ही उत्तर दो, क्योंकि अधिक

समय तक मैं यहां नहीं ठहरूंगा।" गम्भीर स्वर में योगी ने कहा।

रामकृष्ण देव श्री जगदम्बा के काली मन्दिर में भावाविष्ट हो जब ध्यानमग्न हुए तो उन्होंने मां की अमर वाणी सुनी—"हां पुत्र, अवश्य सीखो, इसी प्रयोजन हेतु इस योगी का यहां आगमन हुआ है।" तोतापुरी को मां की स्वीकारोक्ति उन्होंने बतला दी। तोतापुरी मन ही मन प्रसन्न भी हुए एक विजेता की तरह।

"और तब तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है जिसका नाम ईश्वर है। धीवर के जाल में तीन प्रकार की मछलियां फंसती हैं। कुछ जैसी की तैसी पड़ी रहती हैं। न वहां से निकलने का यत्न करती हैं और न यह जान पाती हैं कि उन पर कोई संकट आ पड़ा है। कुछ मछलियां भागने का प्रयत्न करती हैं पर भाग नहीं पातीं क्योंकि उन्हें मार्ग ही नहीं मिलता। और उसी जाल में एक-आध बहादुर जीवटी, ऐसी भी मछली होती है जो जाल को काट कर निकल भागती है। ऐसे ही संसार में तीन प्रकार के जीव दिखते हैं—बद्ध, मुमुक्ष और मुक्त।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वेदान्त साधना से पूर्व उन्हें शिखा-सूत्र का त्याग कर संन्यास ग्रहण करना होगा तो उन्होंने नम्रतापूर्वक तोतापुरी जी से कहा—"मां से यह रहस्य गुप्त रखा जाए तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं, चूंकि पुत्र को केश मुंडित संन्यासी रूप में देख कर उनके मन को बड़ा आघात पहुंचेगा।"

तोतापुरी जी ने शिष्य की शर्त स्वीकारते हुए शुभ मुहूर्त में पितृ-पुरुषों की तृप्ति के श्राद्धादि से निवृत्त करा शास्त्रानुसार संन्यास की दीक्षा दी और उन्हें अद्वैतवेदान्त का उपदेश दिया।

रात बीतने पर योगी ने हवनादि कराने के पश्चात् रामकृष्ण को समाधि लगाने के लिए प्रेरित किया और स्वयम् निकट बैठ गये। थोड़ी देर बाद उठे और पंचवटी की चौकसी में शान्त भाव से लगे रहे जिससे कोई समाधि में विघ्न न पड़े। शिष्य भी आत्मविभोर मुद्रा में इहलोक और परलोक त्याग करने का संकल्प ले गुरु के आदेशानुसार पवित्र अग्नि

में आहुति देते रहे। इस अवस्था में तोतापुरी जी के स्वर निरन्तर गूंजते रहे—'ब्रह्म नित्य मुक्त, देश-काल-निमित्त द्वारा अपरिच्छिन्न एकमात्र सद्वस्तु है। साधक जब समाधि के परमानन्द में लीन हो तो उसे निगूढ़ मायाजनित देश-काल अथवा नाम रूप का कोई भान नहीं रहता। उसे नाम रूप के पिंजड़े को तोड़ सिंह की तरह बाहर निकलना है। आत्मा के अनुसंधान में गहरी डुबकी लगा कर समाधि के माध्यम से उसमें दृढ़ता से प्रतिष्ठित हो जाओ।" तोतापुरी का आदेश वे अक्षरतः पालन करते गये।

"ईश्वर सभी मनुष्यों में है ! पर सभी मनुष्य ईश्वर में नहीं हैं, इसलिए वे कष्ट पाते हैं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण ने अपने ही शब्दों में उस अवस्था का वर्णन इस प्रकार शिष्यों को सुनाया—"दीक्षा के उपरांत न्यांगटा ने मुझे अपना मन समस्त विषयों से हटाकर आत्मा में प्रतिष्ठित करने के लिए जब आदेश दिया तो मुझे सिवाय एक वस्तु के, अन्य समस्त पदार्थों से मन को विरक्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न हुई। किन्तु मेरे सम्मुख चिरपरिचित दिव्य-कान्तिमयी मां की आनन्दमयी चेतनाशील मूर्ति जो मेरे जीवन की एक जीवन्त सत्य भी थी उसके नाम रूप की सीमा से परे जाने में मुझे रोक रही थी। मैंने अंत में हताश हो न्यांगटा से कहा—"मैं अपना मन निरूपराधिक ब्रह्म में लीन कर आत्मसाक्षात्कार नहीं कर पा रहा हूं, मुझसे यह सम्भव नहीं जान पड़ता, मैं इसे नहीं कर सकता।"

तत्काल न्यांगटा उत्तेजित हो तिरस्कारपूर्ण शब्दों में गरजते हुए बोले—"क्यों नहीं होगा तुमसे ? तुम्हें यह करना ही है।"

चारों ओर अपनी पैनी दृष्टि डाल एक कांच का टुकड़ा उठा कर उसकी नोंक मेरी भ्रूमध्य में गड़ाते हुए उन्होंने चीत्कार भरे स्वर में कहा—"मन को इस आक्रान्त बिन्दु पर केन्द्रित करो और इधर-उधर ध्यान न भटकने दो।"

"दूध में मक्खन है—ऐसा गला फाड़कर चिल्लाते रहने से तुम्हें मक्खन नहीं मिल सकेगा। यदि तुम मक्खन पाना चाहते हो, तो पहले दूध की दही बनाओ, फिर उसे अच्छी तरह मथो। तब कहीं तुम्हें मक्खन मिल सकेगा। इसी प्रकार यदि तुम ईश्वर

को देखना चाहते हो, तो आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करो।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

"मेरे पुनः ध्यान लगाते ही जैसे ही जगन्माता की मूर्ति फिर सम्मुख प्रकट हुई, ज्ञान-खड्ग की कल्पना कर उससे मूर्ति के दो टुकड़े कर दिए। जब मन में कोई विकल्प शेष नहीं रहा और नामरूप की सत्ता से ऊपर उठ गया तब मैं पूर्णतया समाधि में लीन हो गया।"

तोतापुरी जी संयत भाव से पूरी सावधानी से शिष्य के भाविष्ठभाव की परीक्षा काफी समय तक करने के पश्चात् मन्दिर के कपाट बन्द कर बाहर से ताला लगा कर बाहर आ गये।

तीन दिन बीते भीतर से कोई भी स्वर बाहर जब नहीं सुनाई पड़ा तब विस्मयाकुल मुद्रा में दरवाजा खोल उन्होंने श्री रामकृष्ण को ठीक उसी आसन में विराजमान पाया जैसा समाधि में वे बिठा कर बाहर गये थे।

आश्चर्यचकित हो वे अद्भुत दृश्य देख हतप्रभ मुद्रा में स्वयम् से ही प्रश्न कर उठे—"क्या यह सब कुछ मैं सत्य देख रहा हूं? क्या यह सम्भव है कि जिसकी प्राप्ति वे 40 वर्षों की कठोर तपस्या करने के उपरान्त नहीं कर पाये, इस व्यक्ति ने एक ही दिन में प्राप्त कर दिखाया? यह कैसी दैवी माया है?"

यह वास्तव में निर्विकल्प समाधि थी जो अद्वैत साधना का परम लक्ष्य है। उनका हृदय उल्लास और आनन्द से भर गया।

तत्काल तोतापुरी ने श्री रामकृष्ण का मन पुनः दृश्य जगत में लौटाने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर धीरे-धीरे चेतनावस्था में ला बाह्य जगत की सीमा में प्रवेश कराया।

"यदि तुम किसी भी तरह यह 'मैं-पन' दूर न कर सको, तो इसे 'दास-मैं' के रूप में रहने दो। जो 'मैं' अपने के ईश्वर के दास और प्रेमी के रूप में जानेगा, वह गड़बड़ी कम करेगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

जब शिष्य पूर्ण चेतना प्राप्त कर गुरुचरणों में स्नेहपूर्वक लुण्ठित हो उठे, गुरु ने आगे बढ़कर अपने प्रगाढ़ बाहुपाशों में बांध लिया। जो योगी किसी स्थान पर तीन दिन से अधिक ठहरता नहीं था वह अपने योग्य शिष्य

को अद्वैत के चरम शिखर पर पहुंचाने के लिए दक्षिणेश्वर मन्दिर में निरन्तर ग्यारह मास रह कर अभ्यास कराने में जुटे रहे।

जो वेदान्ती श्री रामकृष्ण की जगन्माता की पूजा-अर्चना को कुसंस्कारी और निरर्थक मान तिरस्कार करते थे, परिस्थितियों ने उसी जगन्माता के अस्तित्व को स्वीकारने पर बाध्य कर दिया था। उन्हें यह ज्ञान हो गया था कि ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, यह एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं।

"मेरी मुक्ति कब होगी ? जब यह 'मैं-पन' दूर होगा। 'मैं और मेरा' अहंकार है। 'तू और तेरा' यह ज्ञान है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण जी इसी अवस्था में पूरे छः मास रहे जिसका उल्लेख उन्होंने अपने ही शब्दों में इस प्रकार किया—"मैं लगातार छः मास तक उस अवस्था में रहा, जिसमें साधारण मनुष्य पहुंच ही नहीं सकता, यदि पहुंचा तो पहुंच कर वापिस लौटना कठिन है। शरीर 21 दिन में सूखे पत्ते की तरह झड़ जाता है। मुझे दिन-रात का न ज्ञान था न होश। मक्खियां मेरे मुंह और नाक में उसी प्रकार से निःसंकोच घुस जातीं जैसे वे मृत देह में स्वतन्त्र विचरती हैं। धूल उड़ कर केशों में प्रवेश कर जटा की तरह जम गई थी। अगर मन्दिर में टिके एक साधु ने इस शरीर की सेवा न की होती तो यह टिक न पाता।

वह नियमित रूप से भोजन ला मेरे होश का अनुभव होते ही खाद्य-कौर को बलपूर्वक मुंह में ठेल थोड़ा-बहुत अश उदर में पहुंचाए बगैर न रहता।

"ज्ञानी माया का त्याग करता है। माया एक आवरण के सदृश है (जिसे वह दूर फेंक देता है) देखो, जब मैं दीपक के सामने रुमाल कर देता हूँ तो तुम उसके प्रकाश को नहीं देख सकते।" तब गुरु ने अपने व शिष्यों के बीच रूमाल की आड़ करते हुए कहा—"अब तुम मेरा चेहरा नहीं देख सकते।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

छः मास कठिन तपस्या में इसी प्रकार कटे, अंत में एक दिन मां ने

आदेश दिया—"लोकशिक्षा के लिए भावमुखी होकर रह।" उसके बाद शरीर भयंकर रूप से आंव के रोग से ग्रसित हुआ और छः महीने की चिकित्सा के बाद धीरे-धीरे सामान्य हो पाया। और तब श्री तोतापुरी ने उन्हें परमहंस की उपाधि से विभूषित किया और 1866 में दक्षिणेश्वर छोड़ कर वे चले गये।

रामकृष्ण ने कहा—"पंचभूतों के चपेटों में पड़ कर ब्रह्म रोया करता है। आंखें मूंद कितना ही कहे— मुझे कांटा नहीं गड़ा, पैर में दर्द की चुभन नहीं—पर कांटा चुभते ही वेदना से मन व्याकुल हो ही जाता है। उसी प्रकार मन को कितना ही सिखाइये कि तेरा जन्म नहीं होता, मरण नहीं होता; तुझे न पाप होता है न पुण्य; तेरे लिए शोक है न दुख, न क्षुधा न तृष्णा; तू जन्मजात-रहित, निर्विकार, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है—पर शरीर थोड़ा अस्वस्थ होने पर, या मन में थोड़ा ही सांसारिक रूप-रसादि का सुख मिला, मन में मोह, दुख और यातना की लहरें उमड़ने लगती हैं। इसी प्रकार यदि ईश्वर की कृपा न हुई, महामाया ने गले से फांसी का फन्दा न खोला तो किसी को आत्मज्ञान और आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।

"सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये"—उस जगदम्बा ने कृपा करके यदि मार्ग साफ नहीं किया तो कभी कुछ सिद्धि प्राप्त करने की आशा नहीं है।

तोतापुरी जी का जन्म पश्चिम भारत में हुआ था जिनके गुरु जी का निवास-स्थान कुरुक्षेत्र के समीप लुधियाना नामक स्थान पर था। उनके गुरु भी एक प्रख्यात योगी थे जिनका मठ भी था। उनकी मृत्यु के उपरान्त उसी मठ के महन्त श्री तोतापुरी जी बने थे। उनका कथन था—

"गुरु कृष्ण वैष्णव तीनेर दया होलो,
एकेर दया बिने जीवछारे खारे गेलो।"

"जल्दबाजी मत करो, धीरे-धीरे अपनी ताकत के अनुसार कदम बढ़ाओ। तुम निश्चय ही अपने लक्ष्य पर पहुंच जाओगे, इसलिए भागने की जरूरत नहीं है! परन्तु रुको मत! धर्म वह

पथ है जो परमात्मा तक पहुंचा देता है, परन्तु एक मार्ग एक घर नहीं है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अर्थात् श्री गुरुदेव, श्री कृष्ण तथा वैष्णव इन तीनों की कृपा तो प्राप्त हुई किन्तु एक की कृपा के बिना जीव का ध्वंस हो गया।

श्री पुरी गोस्वामी जी को 'कीमिया' ALCHEMY विद्या का पूर्ण ज्ञान था जिन्होंने कई बार तांबे आदि धातु से सोना बनाने में भी सफलता पाई थी। उनका कथन था कि मण्डली के प्राचीन परमहंस को यह विद्या गुरुपरम्परा से प्राप्त हुई थी जिसमें वे दक्ष थे। उनकी धारणा थी कि स्वार्थ साधन और भोग-विलास के प्रयोजन हेतु इसे निषेध माना गया है। मण्डली के साधुओं को तीर्थभ्रमणार्थ भोजन-व्यवस्था और मार्ग-व्यय के लिए इसका उपयोग सेवार्थ अर्थाभाव के समय प्रबन्ध के लिए ही किया जाता था।

नौ

पत्नी शारदामणि में देवी-दर्शन

"देखो, समुद्र के किनारे सदा निवास करने वाले व्यक्ति के मन में भी कभी-कभी यह इच्छा हो जाया करती है कि देखें तो भला इस रत्नाकर के गर्भ में कैसे-कैसे रत्न हैं। उसी प्रकार माता को प्राप्त कर लेने पर और सदा उसके साथ रहते हुए उस समय मेरे मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो जाती थी कि अनन्तभावमयी, अनन्तरूपिणी माता का भिन्न-भिन्न भावों और भिन्न-भिन्न रूपों में, मैं दर्शन करूं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

मई 1867 में श्री रामकृष्ण आमाशय से आक्रान्त हो स्वास्थ्य लाभ हेतु हृदय और योगेश्वरी के साथ कामारपुकुर आये। गांव के शांत वातावरण में सरल प्रकृति लोगों के बीच रहकर उनके दुख-सुख में सम्मिलित होकर उन्हें विशेष आनन्द का अनुभव हुआ।

यह समाचार जब जयरामबाटी में प्राप्त हुआ तो उनकी पत्नी शारदामणि अपने मायके से कामारपुकुर पहुंच पति की सेवा-सुश्रूषा में पूर्णरूपेण जुट गई। इस समय उनकी आयु चौदह वर्ष की हो चुकी थी।

रामकृष्ण ने अपने गृहस्थ जीवन की अग्नि-परीक्षा में प्रवेश किया और उन्होंने अपने आचार-विचारों से प्रमाणित कर दिया कि वे अपनी पत्नी के प्रति अटूट आस्था रखते हैं जिसके वशीभूत होकर शारदामणि अपने सन्त-पति का पूर्ण निःस्वार्थ प्रेम पाकर उनके श्रीचरणों में समर्पित

हो गई थीं। उन्होंने रामकृष्ण, को अपना इष्ट मान उनके पदचिह्नों का अनुसरण कर अपने चरित्र का विकास किया।

वे जब भैरवी के सम्पर्क में रह तन्त्र-साधना किया करते तो शारदामणि किसी प्रकार की बाधक न बनतीं।

एक दिन उन्होंने बतलाया कि भैरवी ब्राह्मणी रात में कहीं से एक पूर्ण युवती सुन्दर रमणी को साथ बुलाकर लाई है। जब पूजनादि का सारा प्रबन्ध विधिवत् कर लिया तो रमणी को निर्वस्त्र कर देवी के आसन पर बिठा रामकृष्ण से बोली—"बाबा, देवी भाव से इनका पूजन करो।"

पूजन जब समाप्त हुआ तो उसने आदेश दिया—"बाबा, साक्षात् जगज्जननी ज्ञान से इनकी गोद में बैठकर तन्मय मुद्रा में जाप करो।"

रामकृष्ण भयाक्रान्त हो आश्चर्यजनक स्थिति में गिड़गिड़ाकर रोते हुए मां (श्री जगदम्बा) से कहने लगे—"मां, अपने शरणागत बालक को यह कैसी आज्ञा दे रही हो? तेरी इस दुर्बल संतान में इस प्रकार का दुस्साहस करने की सामर्थ्य कहां है?" तभी दिव्य-शक्ति हृदय में कौंधी और वे तन-मन की सुध भूल मंत्रोच्चारण करते हुए रमणी की गोद में बैठ समाधिस्थ हो गये।

जब चेतना जागी तो भैरवी रामकृष्ण से कह रही थी—"बाबा, क्रिया सफलतापूर्वक पूर्ण हुई है। दूसरे लोग मन्त्र-जाप करने के पश्चात् विरत हो जाते हैं जबकि आप समाधि में लीन रहे।"

रामकृष्ण ने कृतज्ञतापूर्वक मां के चरणों में प्रणाम किया।

"मानव-जाति में चाहे कितना भी पार्थक्य क्यों न हो, हम जितना ही उसे प्रेम करेंगे, उतना ही भगवान के निकटतर हो जायेंगे। मन्दिरों में भगवान की खोज, अथवा भगवान के निकट किसी अलौकिक चमत्कार व आविर्भाव के लिए निवेदन सर्वथा अनावश्यक है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

किन्तु एक दिन की घटना उन्होंने इस प्रकार वर्णन की—

योगेश्वरी ने नर-मांस का सड़ा-गला टुकड़ा पहले श्री जगदम्बा को अर्पित किया, तत्पश्चात् मुझे आदेश दिया कि मैं उसे जीभ से स्पर्श करूं। मेरा मन घृणा से विचलित होकर कराह उठा—"यह कैसे हो सकता है,

मेरे लिए यह सम्भव नहीं है।"

ब्राह्मणी कुछ रुककर बोली —"बाबा, इसमें क्या है ? देखिये मैं स्वयं इसे ग्रहण कर रही हूं।" टुकड़ा मुंह में डालती आगे बोली—"घृणा करना कभी उचित नहीं।" और फिर उस टुकड़े को मेरे सम्मुख प्रस्तुत कर दिया उसने उसी क्षण।

योगेश्वरी का उपरोक्त आचरण देख उसी क्षण मुझे श्री जगदम्बा की विकराल चण्डिका-मूर्ति का उद्दीपन हो उठा और मैं 'मां-मां' कहता हुआ भावाविष्ठ हो गया और तब मुझे ब्राह्मणी द्वारा मेरे मुंह में डाले टुकड़े से मन में घृणा न हुई।

"जहां तक उसका अहम् आपेक्षिक रूप से, उसके लिए सत्य है; परन्तु जब उसका अहम् पवित्र हो जाता है तो वह समस्त बाह्य जगत को इन्द्रियों के निकट निरपेक्ष की बहुरूप अभिव्यक्ति के रूप में देखता है।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण शारदामणि से निरन्तर समाधि में रहते हुए भी अपनी सहधर्मिणी के प्रति रंचमात्र भी उदासीन न थे। उन्होंने पत्नी को केवल आध्यात्मिकता की ही शिक्षा न देकर समस्त ऐहिक वस्तुओं का भी ज्ञान दिया जिससे वे भविष्य में एक आदर्श गृहिणी का कर्त्तव्य निर्वाह कर सकीं।

एक दिन भैरवी योगेश्वरी चन्दन का लेप और फूल माला लिये रामकृष्ण के निकट पहुंची। यह माला उसने बड़े यत्न से निष्ठापूर्वक स्नेहवश स्वयं तैयार की थी।

"सांचा तैयार हो गया है—अपना-अपना जीवन उसमें ढाल कर रख लो !"

"जो राम और कृष्ण (हुआ था) वही अब रामकृष्ण होकर आया है।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

फिर उसने बड़े श्रद्धाभाव से रामकृष्ण को चैतन्य के अवतार के रूप में अश्रुपूरित नेत्रों से सजाया और उनसे क्षमा-याचना कर सदा के लिए कामारपुकुर से विदा हो गई।

शारदामणि के प्रति पति की कर्त्तव्यपरायणता योगेश्वरी की आंखों में खटकती रहती। उसे भय था कि इस आचरण से रामकृष्ण का साधु जीवन

भटक सकता है। भैरवी की आपत्तियों पर रामकृष्ण ने विशेष ध्यान जब नहीं दिया तो मिथ्या अहंकारिणी योगेश्वरी अपनी उपलब्धियों के बावजूद मन को नियंत्रित नहीं कर पाई थी। जब उसका भ्रम टूटा तो अपनी अज्ञानता पर विचार करती हुई काशीधाम प्रस्थान करने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग उसे दृष्टिगोचर न हुआ।

भगवान् के प्रेम पगे पति के पुनीत साहचर्य में शारदामणि को अनुपम आनन्द की प्राप्ति हुई थी।

"धर्म की प्राप्ति कैसे हो, ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो? इन विचारों से व्याकुल होकर जो यहां आयेंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उन्होंने स्वयम् इसकी चर्चा करते हुए कहा—"मुझे सदा ऐसा अनुभव होता मानो किसी ने अमृत का घड़ा मेरे हृदय में रख दिया हो।" इसी प्रकार आनन्द के सागर में चार वर्ष किस तरह बीते उन्हें ज्ञात नहीं।

जब वे 18 वर्ष की हुईं तो दक्षिणेश्वर से समाचार मिला कि पति पूर्णरूपेण पागल हो गए। मार्च 1872 में पिता के साथ तत्काल निश्चय कर दक्षिणेश्वर के लिए प्रस्थान कर काली-मन्दिर पहुंच गईं। वहीं उनकी मां पहले से थीं।

"धर्म कभी पूर्ण नहीं होता। यह एक अविराम कर्म है, अविराम कामना है—यह एक निरन्तर प्रवाहित होने वाला जल-प्रवाह है, एक बद्ध जलाशय नहीं है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

नौबतखाने में ही मां के साथ रहने की व्यवस्था कर दी गई। उस प्रवास में शारदामणि को किसी प्रकार की मानसिक व्याधि के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुए। रामकृष्ण पूर्णतया सामान्य लगे जैसे कामारपुकुर में अपने प्रति नम्र दृष्टिकोण पाया था। अतः पूर्ण विश्वास और श्रद्धा के साथ पति और सास की सेवा में समय व्यतीत करने लगीं।

श्री रामकृष्ण ने पत्नी को प्रशिक्षित करने का पुराना कार्य फिर अपने हाथों में सम्हाल लिया और पति के दायित्व-निर्वाह में जुट गये। उन्होंने अपनी समस्त अनुभूतियों, बहुमुखी शिक्षा, ब्रह्मज्ञान से गृहकार्य आदि पद्ध-

तियों का पूर्ण ज्ञान देने की भी चेष्टा की। वे मात्र आदेश देकर ही सन्तुष्ट न हो जाते वरन् यह भी ध्यान देते कि शारदामणि विधिवत् साधना से रुचि कैसे ले रही हैं।

कुछ समय के बाद उनके मन में एक इच्छा जगी। 5 जून, 1872 की अमावस्या की रात को काली-पूजा का आयोजन किया गया। उचित व्यवस्था कराने के पश्चात् शारदा को उपस्थित रहने का निर्देश दिया और स्वयम् पुजारी का आसन ग्रहण किया। सभी कार्यक्रम सुचारु रूप से पूर्ण होने के पश्चात् शारदामणि को देवी के लिए निर्दिष्ट आसन पर बैठने के लिए कहा। शारदा उस समय अर्ध ब्राह्म दशा में थीं, उसी क्षण उन्हें देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर औपचारिक पूजा सम्पन्न की। पूजा के दौरान शारदामणि समाधि में मग्न हो डूबी रहीं। मंत्रोच्चारण करते हुए राम-कृष्ण भी निर्विकल्प समाधि में डूब गये। आधी रात तक अनुष्ठान चलता रहा। मध्यरात्रि की उचित वेला में श्री रामकृष्ण किंचित् प्रकृतिस्थ हुए।

'साकार भगवान ने उनसे कहा था : मैं ही निरपेक्ष हूं। मैं ही पृथकीकरण का मूलाधार हूं। निरपेक्ष पुरुष से जो दिव्य-शक्ति विकीर्ण होती है, उसके मूल में उन्होंने उसी तत्त्व को देखा था जोकि परमात्मा और विश्व को पृथक् करता है, जोकि निरपेक्ष भगवान और माया में समान रूप में विद्यमान है। माया, शक्ति, प्रकृति यह भ्रान्ति नहीं है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

उन्होंने तभी समुचित मंत्रों के माध्यम से फल सहित अपने जीवन की समस्त साधनाओं को, स्वयम् को तथा अपनी जपमाला को श्री मां के चरणों में समर्पित कर उन्हें प्रणाम किया। इस प्रकार श्री रामकृष्ण जी ने उपरोक्त अनुष्ठान की पूर्ति कर तन्त्रों में निहित जगन्माता त्रिपुरासुन्दरी की पूजा या षोडशी पूजा के नाम से वर्णित आध्यात्मिक साधनाओं की लम्बी श्रृंखला भी समाप्त कर डाली। वे उन्हें ठाकुर जी कहने लगी थीं।

कुछ दिन बाद शारदामणि ने स्वामी के पैर दबाते हुए प्रश्न किया, "तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो?"

उन्हें रामकृष्ण ने तत्काल उत्तर दिया—"जो मां मन्दिर में पूजित है, जिसकी पूजा की जाती है। जिसने इस शरीर को जन्म दिया और अभी

भी नौबतखाने में निवास कर रही है, वही इस समय मेरे पैर दबा रही है। सचमुच मैं तुम्हें आनन्दमयी मां के रूप में देख रहा हूं।"

"मैं तुमसे सच-सच कहता हूं, जो उन्हें चाहता है वह उन्हें पाता है। जाओ और अपने ही जीवन में इसकी यथार्थता की जांच कर लो। तीन दिन प्रयास करो, तुम्हें निश्चित ही सफलता मिलेगी।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

पति-पत्नी दोनों का मन ब्रह्म के साथ एकरस हो चुका था। स्वयम् श्री रामकृष्ण ने शारदा के सन्दर्भ में भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—"विवाह के पश्चात् मैंने जगन्माता से व्यग्रतापूर्वक प्रार्थना की कि मां! तू उसके सांसारिक मन से ऐन्द्रिक सुख की कामना को समूल नष्ट कर दे। उसके साहचर्य से मुझे अनुभव हो गया है कि मेरी प्रार्थना सुन ली गई और स्वीकार भी हो गई।"

रात्रि में श्री ठाकुर ने शारदामणि को अपने ही कमरे में अपनी ही चारपाई पर रहने की आज्ञा दे दी थी, क्योंकि उनका सहधर्मिणी-भाव शिष्या-भाव में विलीन हो गया था। यही उनके लिए महान् गौरव और आनन्द की स्रोत थी। शारदामणि और उनकी आराध्या देवी में तनिक भी अन्तर न था। श्री ठाकुर सदैव बलपूर्वक यही शिक्षा देते—"मन और मुख को एक करो।"

गंगा के निर्मल जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब देख वे कहतीं—"चन्द्रमा में भी काले धब्बे हैं। हे परमात्मा! तुम मुझे निष्कलंक कर दो। मुझे ऐसा पवित्र और धवल बनाओ जैसा कि चन्द्रमा का प्रकाश है।"

श्री रामकृष्ण जानते थे कि उन्होंने जो कार्य संसार के कल्याण के लिए प्रारम्भ किया है, उसी पावन कार्य को उनकी सहधर्मिणी को आगे बढ़ाना होगा। उन्होंने ऐसे मंत्र उनको इसीलिए सिखलाये जो वे अपने भविष्य में होने वाले शिष्यों का सहजता से मार्गदर्शन कर सकें।

जब श्री रामकृष्ण के स्वास्थ्य में नाना प्रकार की औषधियों से भी कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं हुआ तो उन्हें आभास हो गया कि ठाकुर जी का अन्त सन्निकट है और इसके लिए अपने को उन्हें तैयार करना होगा। और वह दुर्दिन 16 अगस्त 1886 का सोमवार अचानक सामने आ ही

खड़ा हुआ और उनके ठाकुर जी इस नश्वर संसार का मोह त्याग शिष्यों सहित अपनी सहधर्मिणी को बिलखता छोड़ महासमाधि में लीन हो गये।

"स्थूलभाव से समाधि दो प्रकार की होती है। ज्ञान-मार्ग से विचार करते-करते अहंकार का नाश हो जाने पर जो समाधि होती है उसे 'जड़', 'स्थिर' अथवा 'निर्विकल्प' समाधि कहते हैं। भक्ति-मार्ग की समाधि को भाव-समाधि कहते हैं। इस प्रकार समाधि में सम्भोग के लिए या आस्वादन के लिए किंचित् अहं-भाव शेष नहीं रहता।" --श्री रामकृष्ण परमहंस

जब उन्होंने वैधव्य-वेश धारण करने की तैयारी में व्यस्त अपने हाथ के कंकण उतारे तो उन्होंने अनुभव किया जैसे भगवान् रामकृष्ण स्वयं प्रकट हो उन्हें सान्त्वना देते हुए प्रश्न कर रहे थे—"तुम यह क्या करने जा रही हो? अज्ञानी न बनो! मैं कहां गया हूं? यह तो एक कक्ष से दूसरे कक्ष में जाने के समान है।"

इस अनुभूति से उनको धैर्य प्राप्त हुआ और वैधव्य-वेश धारण करने का विचार त्याग उनके अधूरे स्वप्नों को साकार करने के लिए मनोबल जागा। शोक प्रकट करने के लिए उन्होंने मात्र अपनी साड़ी का लम्बा और लाल किनारा फाड़ दिया। आंखों से आंसुओं की कतार टप्-टप् झरती अपने ठाकुर के श्रीचरणों को धोने में जुट गई।

और वे, ठाकुर जी के देहावसान के पश्चात् 30 अगस्त, 1886 को, भक्तों के साथ व्यथित हृदय की शांति और धैर्य के निमित्त उत्तरी भारत की तीर्थ-यात्रा पर निकलीं। वैद्यनाथधाम, बनारस, देवघर, अयोध्या होती हुई वृन्दावन पहुंचीं जहां उन्होंने कृष्ण लीला स्थानों की परिक्रमा के समय ठाकुर के दर्शन भी किये।

दस

विभिन्न धर्मों की साधनाएं

"गीली लकड़ी को आग पर रखने से जिस प्रकार उसकी नमी धीरे-धीरे दूर हो जाती है, उसी प्रकार जो व्यक्ति भगवान के शरणागत होता है, उसके पवित्र नाम का जाप करता है, उसकी सांसारिकता की आर्द्रता सूख जाती है। पर जो यह सोचे कि पहले वस्तुओं के प्रति आसक्ति का त्याग करूं, फिर भगवान की चिन्ता करूंगा, वह कभी ऐसा करने में समर्थ नहीं होगा, क्योंकि ऐसा समय कभी आयेगा ही नहीं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण को अद्वैत भावभूमि में रहकर यह ज्ञात हो गया था कि अद्वैत-भाव में स्थिर होना सब प्रकार के साधन-भजनादि का अन्तिम लक्ष्य है। इसी प्रकार भारतवर्ष में प्रचलित अन्य धर्म-सम्प्रदायों के मत की साधना करने पर साधक को उसी एक अवस्था की प्राप्ति होगी—वह अवस्था भी अद्वैत अवस्था ही है—अर्थात् जितने भी मत-मतान्तर हैं उतने ही उनके प्राप्त करने के मार्ग हैं।

उन दिनों दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर की अतिथिशाला में हिन्दू संन्यासियों के समान मुसलमान फकीरों का भी आगमन होता। क्षत्रिय कुल में जन्मे गोविन्दराय ने अन्य धर्मों के अध्ययन के लिए इस्लाम-धर्म की दीक्षा ली जो अपने को सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी मानते

थे। गोविन्दराय शीघ्र ही प्रेमी स्वभाव के कारण रामकृष्ण के सरल व्यक्तित्व व ईश्वर-प्रेम से प्रभावित हो निकट आये। घनिष्ठता मित्रता में बदली और रामकृष्ण के मन में इच्छा उत्पन्न हुई, क्यों न इस्लाम-धर्म द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग का अवलोकन किया जाये? उन्होंने इस्लाम-धर्म की दीक्षा तत्काल ले ली। वह यह भी जानना चाहते थे कि भगवान् इस मार्ग के अनुयायियों पर कैसी कृपा करते हैं। और विशिष्ट लगन के साथ साधना में जुट गये।

उस समय की अपनी मानसिक स्थिति के सन्दर्भ में उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया—"मन के सारे हिन्दू संस्कार त्याग अपने देवी-देवताओं को मैंने प्रणाम करना बन्द कर दिया था। उनके दर्शन करने की इच्छा मन में जागृत ही न होती। तब मैं अल्लाह का नाम ही जपता, मुसलमानों के समान

"रमणीर संगे थाके, ना करे रमण।"

"रमणी के साथ रहकर भी जो रमण न करे, सहज मानव है और संसार में काम-कांचन के भीतर भी अनासक्त रूप से रहे।"

"रांधुनी हइबी व्यंजन बांट बी, हांड़िन छुंईबी ताय,
सापेर मुखे ते भेकेरे नाचबी, साप न गिलिबे ताय;
अमिय-सागरे सिनान करबी, केश न भिजिबे ताय।"

अर्थात् रसोइया बनकर रसोई बनाना, व्यंजनों को बांटना, परन्तु हांडी का स्पर्श न करना, सांप के मुंह में मेंढक को नचाना किन्तु सांप उसे न निगले। अमृत के समुद्र में नहाये, पर केशों को न भिगोये—वही आध्यात्मिक साधक है।

"सागर में मोती हैं पर उन्हें पाने के लिए तुम्हें बार-बार गोता लगाना होगा। उसी प्रकार ईश्वर संसार में ही हैं पर उन्हें देखने के लिए तुम्हें दृढ़ प्रयास करना होगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

कपड़े पहनता और नियमित रूप से तीन बार नमाज पढ़ता। बिना कछोटा बांधे धोती पहनता। उस साधना काल में मुसलमानों की तरह गो-मांस भी खाने की प्रबल इच्छा जागी परन्तु मथुरबाबू के विशेष आग्रह और विनती के प्रभाव में इच्छा का दमन कर दिया जिन्होंने हिन्दू रसोइये से

मुसलमानी ढंग की रसोई की व्यवस्था कर दी थी।

"केवल तीन दिन के पश्चात् मुझे भक्ति-पथ का चरम लक्ष्य प्राप्त हो गया और अनुभूति हुई—दीर्घ दाढ़ी युक्त एक तेजोमय गम्भीर आकृति वाले पुरुष के मुझे दर्शन हुए और फिर आक्रान्त मन सगुण ब्रह्म का अनुभव करते हुए अन्त में निर्गुण ब्रह्म में लीन हो गया। यह कितना कटु अनुभव था किन्तु सत्य भी उतना ही।"

इस इस्लाम-धर्म की साधना से उन्हें अपने प्रश्न का स्पष्टीकरण मिल गया था कि समस्त धर्मों के आधारस्वरूप केवल अद्वैत के माध्यम से हिन्दू-मुसलमान एकता-सूत्र में बंधने में सक्षम हैं।

"जिस प्रकार पानी को कोई 'वारि' कहते हैं, कोई पानी, कोई 'वाटर' तो कोई 'एकुआ', उसी प्रकार एक सच्चिदानन्द को कोई 'गॉड' कहते हैं कोई 'हरि' कहते हैं, तो कोई 'राम' तो कोई 'अल्लाह' कह कर पुकारते हैं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

ठीक सात वर्षों के उपरांत 1874 में एक दिन अपने एक हितैषी शम्भूनाथ मलिक के सम्पर्क में भी आये। दक्षिणेश्वर काली मन्दिर के निकट ही उनका निवास एक उद्यान वाटिका में था। ईसाई न होते हुए भी वे बाइबिल का पाठ करते। वे अचानक एक दिन यदुनाथ मलिक के बैठक में विचार-विमर्श करते समय उनकी दीवार पर टंगी सुन्दर तस्वीर के प्रति आकर्षित हुए जिसमें ईसा अपनी माता मरियम की गोद में बड़ी सरलता से अबोध मुद्रा से बैठे उनकी ओर देख रहे थे।

अद्भुत श्री ईसा की उस बालमूर्ति और देव जननी के अंगों से ज्योति-रश्मियां उठकर उनके हृदय की तन्त्रियों को झंकृत कर उनके जन्मगत हिन्दू संस्कारों के भाव को परिवर्तित करने लगीं।

अपने मन को सम्हालते हुए उन्होंने कातर दृष्टि से श्री जगदम्बा से प्रार्थना की—"मां, मुझे धैर्य दे, यह मानसिक असंतुलन क्यों? आज तू यह क्या कर रही है?"

परिणाम कुछ न निकला जब उनकी अपने देव-देवियों के प्रति अगाध आस्था, अनुराग और प्रीति विलीन होने लगी।

श्री रामकृष्ण ने देखा—गिरजे में पादरी और ईसाई भक्त श्री ईसा

की भव्य प्रतिमा के सम्मुख धूप और मोमबत्ती जलाकर अपने हृदय के आन्तरिक भावोद्गार को प्रकट करते हुए मौन खड़े हैं।

वे व्याकुल हृदय काली-मन्दिर लौटे तो श्री जगदम्बा के दर्शन सम्बन्धी विचारों से अलग-थलग पड़ गये और मन में मात्र ईसा मसीह की भाव-तरंगों में तीन दिन तक लीन रहे।

चौथे दिन पंचवटी के नीचे टहलते हुए उन्होंने एक अलौकिक गम्भीर गौरवर्ण आकृति वाले विदेशी देव मानव को अपनी ओर निहारते समीप आते देखा। चेहरे पर ओजपूर्ण आभा, विशाल नेत्र, लम्बा कद, चपटी नाक की छवि से, 'वे ईसा मसीह ही हैं'—ऐसे विचारों के स्वर कानों में ध्वनित होने लगे—"ईसा, जिसने मानव समाज के उद्धार के लिए अपना खून बहाया, आजीवन कष्ट सहा, ऐसे विशाल हृदय व्यक्ति के अतिरिक्त यह अन्य कोई हो ही नहीं सकता।"

"मनुष्य मानों केवल तकिए के गिलाफ हैं। गिलाफ जैसे भिन्न-भिन्न रंग और आकार के होते हैं वैसे मनुष्य भी कोई सुरूप, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई दुष्ट होते हैं। बस इतना ही अन्तर है। जैसे सभी गिलाफ में एक ही पदार्थ—कपास—भरा रहता है, उसी के समान सभी मनुष्यों में वही सच्चिदानन्द भरा हुआ है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

और उसके बाद उस देवमानव योगीराज ईसा ने उनका स्नेहपूर्वक आलिंगन किया। तदुपरान्त उनके शरीर में प्रविष्ट हो लीन हो गये। राम-कृष्ण बाह्य चेतना से मुक्त हो समाधि में डूब गये। उन्हें यह बाद में दृढ़-विश्वास हो गया कि योगीराज ईसा भी ईश्वर के अवतार थे।

हिन्दुओं की सामान्य धारणा के अनुरूप वे बुद्ध को भी अवतार मान-कर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते जैसे विचारों से जैन धर्म संस्थापक तीर्थंकरों तथा सिक्खों के दस गुरुओं के प्रति वे श्रद्धान्वित थे।

दक्षिणेश्वर स्थित उनके कमरे में तीर्थंकर महावीर की छोटी प्रतिमा और ईसा मसीह की भी एक तस्वीर थी, जिनके सामने भी नित्य प्रति धूनी दिये जाने की व्यवस्था थी। सिक्ख गुरुओं के सन्दर्भ में उनकी धारणा थी कि वे राजा जनक के अवतार थे।

'सांख्य शास्त्र में पुरुष अकर्त्ता है, वह कुछ भी नहीं करता, सब कुछ प्रकृति किया करती है। उनके सब कार्यों पर साक्षी रूप होकर केवल निरीक्षण किया करता है, किन्तु मजा तो यही है कि पुरुष के बिना अकेली प्रकृति को कुछ भी करते नहीं बनता।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

इस प्रकार समस्त साधनाओं की अनुभूतियों ने उनमें यह अटूट दृढ़ विश्वास घर कर गया था कि धर्म सत्य है तथा प्रत्येक मत ईश्वरोपलब्धि का एक अपना-अपना निजी मार्ग है। द्वैत-अद्वैत और विशिष्टाद्वैत ये तीन महान् दर्शन मनुष्य को उस लक्ष्य की ओर बढ़ाने की विभिन्न अवस्थायें होती हैं। ये तीनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूर्णतया सहयोगी और पूरक कहे जा सकते हैं। अतएव उन्होंने समय-समय पर अपने शिष्यों को उपदेश देकर समझाया—

"सभी धर्म सत्य हैं, जितने मत हैं उतने ही पथ हैं। मैंने सभी धर्मों की साधनायें कीं—हिन्दू, इस्लाम, ईसाई आदि धर्मों तथा हिन्दू धर्म के विभिन्न मतों का भी अनुसरण मैंने किया है। मैंने देखा है कि वे सबके सब उसी एक ईश्वर की ओर अपने कदम बढ़ाते चल रहे हैं, भले ही मार्ग उनके अलग-अलग हैं। प्रत्येक वस्तु ब्रह्ममय है, अन्तर केवल रूप में ही है। एक योगी मनुष्य मन और बुद्धि के प्रकाश में शब्दों और विचारों की सहायता से विशिष्टाद्वैत तक तो पहुंच ही सकता है, सन्देह नहीं।"

"संसार का प्रत्येक धर्म एक तालाब के एक घाट के समान है। अपनी लगन और सच्चाई के साथ इनमें से अपने मनोवांछित एक घाट की ओर सीधे चलते जाओ, तुम उसी अनन्त आनन्दरूप 'वारि' को प्राप्त हो जाओगे। पर यह न कहना कि तुम्हारा धर्म दूसरे से श्रेष्ठ है।"

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

अद्वैत मात्र आत्मज्ञान की पराकाष्ठा है जो केवल समाधि के माध्यम से साधक द्वारा अनुभव किया जा सकता है क्योंकि मन और वाणी से वह परे है, दूर है।

"पूर्णत्व की प्राप्ति होने पर ही ब्रह्म और जगत दोनों ही बराबर सत्य प्रतीत होते हैं। ईश्वर का नाम, उनका धाम, तथा वे स्वयं एक ही चिन्मय सत्य द्वारा निर्मित दीख पड़ते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु ब्रह्ममय है, अन्तर केवल उसके रूप में ही है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण को यह भी ज्ञान और विश्वास था कि मन में उत्पन्न होने वाले असाधारण आध्यात्मिक संघर्ष और उनसे उपजी अनुभूतियां उनके लिए नहीं वरन् वे आध्यात्मिक जागरण के लिए एक नये युग की उद्घोषक अवश्य एक दिन बनेंगी।

"जिसने अपना सारा भार माता को सौंप दिया है उसके अन्तःकरण में वह स्वयं रहती है और उसके द्वारा जो कहना चाहिए, वही वह कहलाती है। माता का सहारा मिलने पर किसका ज्ञान-भंडार खाली हो सकता है? वह कितना भी खर्च क्यों न करे माता उसके अन्तःकरण में ज्ञान की राशि लाकर रख देती है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उनके स्पष्ट विचार सारे मानव समाज का एक दिन मार्ग-दर्शन करेंगे और ईश्वरानुभूति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करते हुए धर्म के सच्चे अर्थों से भटके व्यक्तियों को सही दिशा पर ले जाने में सक्षम होंगे। उनके द्वारा चार चुने हुए शिष्यों द्वारा प्रत्येक ने चार महान् धर्मों में से एक धर्म के अध्ययन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया—उपाध्याय गौर गोविन्दराय ने हिन्दू-धर्म, साधु अघोरनाथ ने बौद्ध-धर्म, भाई गिरीशचन्द्र ने इस्लाम-धर्म और प्रतापचन्द्र मजूमदार ने ईसाई-धर्म का गहन अध्ययन करने का बीड़ा उठाया था।

ग्यारह

तीर्थ-परिक्रमा

"अरे मैं पढ़ा-लिखा नहीं तो क्या हुआ ? मैंने सुना कितना है ? और वह सब मेरे ध्यान में है। अच्छे-अच्छे शास्त्री-पंडितों के मुख से वेद-वेदान्त, पुराण सब मैंने सुने हैं, उनमें का सार समझ लेने के बाद उन सब पोथो-पुराणों की एक माला बनाकर माता के गले में पहिनाते हुए मैंने कहा—माता ! ये ले अपने शास्त्र और पुराण, मुझे तो केवल अपनी शुद्ध भक्ति ही दे दे।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

शास्त्रों में तीर्थ-भ्रमण का अपना एक विशेष महत्त्व है। इस विषय में रामकृष्ण के अपने निजी अनुभव थे जिनके अनुसार ईश्वर के दर्शनार्थ जिन स्थानों में साधक जप, तप, अनुष्ठान आदि करते आए हैं ऐसे स्थान पर ईश्वर का प्रकाश अवश्य होता है। साधकों की प्रवलता से ईश्वरीय भावना जो वहां एकत्रित होती है, संयोग से सारा वातावरण भी ईश्वरमय हो जाता है। साधकों में ईश्वरी भाव शीघ्र जागृत होते हैं, चूंकि ऐसे स्थानों पर अनेकों साधु, संत, फकीर और सिद्ध पुरुष अपनी परिक्रमा कर चुके होते हैं।

पानी की आवश्यकता होने पर जहां पृथ्वी खोदी जाये जलधारा प्राप्त हो जाती है। जहां तालाब, बावली, सरोवर और कुआं हैं—वहां ज़मीन खोदने की आवश्यकता नहीं—थोड़े-से हाथ को नीचे झुकाने से ही पानी

मिल जाता है। ऐसे ही ईश्वर के विशेष प्रकाश से युक्त तीर्थस्थलों के दर्शन लाभ कर वहां के भावों को आत्मसात् कर मनन करना श्रेयकर है।

"जिसके हृदय में भक्ति-भाव रहता है, वह यदि तीर्थ-यात्रा करने जाता है, तो उसका वह भाव और अधिक बढ़ जाता है। जिसके हृदय में भक्ति-भाव है ही नहीं, उसे तीर्थ-यात्रा से कोई लाभ नहीं होता।"

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

सन् 1868 में मथुर बाबू और उनकी पत्नी ने उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा का सुझाव श्री रामकृष्ण के सम्मुख रखा कि वे भी कृपा कर साथ चलें। बड़ी कठिनाई के बाद वे सहमत हो गये और 27 जनवरी प्रस्थान करने की तिथि तय हो जाने पर देवघर के लिए 100 से अधिक व्यक्तियों का काफिला रेलगाड़ी से रवाना हुआ। चार डिब्बों में एक द्वितीय श्रेणी का शेष तृतीय श्रेणी के रिजर्वेशन कराये गए थे। व्यवस्था ऐसी थी कि इन चारों डिब्बों को कलकत्ते से काशी के बीच कहीं इच्छानुसार कटवा कर रोका जा सकता था। वैधनाथ धाम जाने के लिए देवघर रुकना आवश्यक था।

"कमल के खिलने पर भौंरों को बुलाना नहीं पड़ता।"

"कलियुग में नाम-स्मरण के समान दूसरा सरल साधन नहीं है।"

"नाम-स्मरण से मनुष्य का मन और शरीर शुद्ध होता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

एक गांव से गुजरते समय वहां के लोगों की शोचनीय स्थिति से दुखी हृदय वे मथुर बाबू से बोले—"तुम मां के भंडारी हो। इन गरीबों को खिलाने की व्यवस्था के साथ एक-एक कपड़ा भी बंटवाओ।" मथुर बाबू ने हिचकचाहट भरे स्वर में कहा—"बाबा! इस यात्रा में बहुता-सा पैसा खर्च होगा। गांव के लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। अगर प्रत्येक को खाना-कपड़ा दिया गया तो यात्रा के लिए धन कम हो जायेगा। फिर आप कहिये क्या और कैसे करें?" थोड़ी देर मौन रहकर वे व्यथित मन से सोचते रहे। इसी बीच उनकी आंखों से आंसुओं की धार बह निकली। क्रोधित स्वर में बोले—"तुम्हें धिक्कार है मथुर बाबू, मुझे तो इन्हीं असहाय लोगों के बीच

रहना है, मुझे काशी नहीं जाना।" और अबोध शिशु की तरह वे चिड़-चिड़ाते हुए उन गरीब ग्रामीण लोगों में जा बैठे।

"मन और मुख एक करना ही साधन है। ईश्वर पर पूर्ण निष्ठा और विश्वास रखकर, फलों की आशा न करते हुए सदैव सत्-असत् विचारपूर्वक संसार के सभी कर्तव्य-कर्मों को करते रहना ही ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों के प्रति उनकी असीम करुणा जब सागर में उठे ज्वार की तरह हृदय में भीषण तूफान उठाने लगी तो उसके वशीभूत होकर मथुर बाबू ने कलकत्ते से गांव वालों में वितरण करने के लिए कपड़ों की गांठें मंगवाकर वितरित कीं और भोजन भी उन्हें दिया गया। इस प्रकार प्रसन्नचित्त मुद्रा में वे काशी प्रस्थान को राजी हो गये। मथुर बाबू उनसे इतने प्रभावित थे कि उन्हें रुष्ट देख ही नहीं सकते थे।

एक दिन जब नौका वाराणसी पहुंची तो उन्हें भगवान शंकर की नगरी सोने से सुसज्जित-सी प्रतीत हुई। बनारस आध्यात्मिकता का घनीभूत पिंड सरीखा लगा जिसमें असंख्य साधुओं और संतों की बहुमूल्य चिन्तनधारा प्रवाहित हो रही है इसीलिए यह देवताओं की नगरी कही जाती है।

"स्वयं माता ने ही मुझे समझा दिया है—'ये इतने लोग ऐसे-वैसे काम करके आते हैं और तुझे स्पर्श करते हैं; उनकी दुर्दशा देख तेरे मन में दया उत्पन्न होती है—और उनके कर्मों का फल तुझे भुगतना पड़ता है, इसीलिए यह ऐसा हो गया है।"

(गले की ओर इशारा करके) इसी कारण यहां यह रोग उत्पन्न हुआ अन्यथा इस शरीर ने न कभी किसी को कष्ट दिया और न कभी किसी की बुराई ही की—तब फिर इसके पीछे रोगटाई क्यों लगनी चाहिए ?"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

प्रतिदिन रामकृष्ण भगवान विश्वनाथ के दर्शनों के लिए जब जाते तो मार्ग में प्रसिद्ध सन्तों के दर्शन करना न भूल पाते। नाव जब मणिकर्णिका के निकट पहुंची तो देखा वहां के श्मशान में कुछ चिताएं धू-धू जल

रही थीं। वे नाव से उतर वहां पहुंचे और समाधिस्थ हो गए। जबकि पंडे उन्हें 'गंगा में न गिरें' पकड़ने दौड़ पड़े थे।

इस घटना के संदर्भ में उन्होंने चेतना आते ही मथुर बाबू को कहा—"मैंने पिंगलवर्ण जटाजूटधारी एक दीर्घाकार श्वेतवर्ण पुरुष को देखा जो धीमे-धीमे चिता के प्रत्येक व्यक्ति को उठाकर उसके कानों में तारक ब्रह्ममंत्र फूंक रहे थे। और वहीं सर्वशक्तिमयी जगदम्बा महाकाली रूप में जीव के दूसरी ओर उस चिता पर बैठी उनके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि के सब प्रकार के संस्कारों के बन्धनों को खोलती हुई निर्वाण के द्वार खोल रही है।"

मुझे विश्वनाथ के इस प्रकार अनायास ही दर्शन हो गये।

एक दिन वे सुविख्यात त्रेलंग स्वामी के दर्शनों के लिए पहुंचे जो मौन-व्रत में थे। उन्होंने रामकृष्ण को आसन ग्रहण करने के लिए संकेत दिया और अपनी सुंघनी की डिबिया स्वागत के रूप में सामने रख दी। उनके प्रश्नों के उत्तर भी त्रेलंग स्वामी ने इशारे से दिये—"समाधिस्थ अवस्था में ईश्वर एक है अन्यथा हम, तुम, जीव, जगत के ज्ञान से अनेक हैं।"

स्नान घाट के निर्माण कार्य में जब रामकृष्ण ने कुछ मिट्टी फावड़े से खोद योगदान किया तो स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए जिनके शरीर में साक्षात् विश्वनाथ आश्रय कर प्रकट हुए थे।

"जिस समय मैं किसी के भी हाथ का खाने लगूंगा, खाद्य पदार्थ का अग्र भाग दूसरे को दे स्वयं उसका अवशिष्ट भाग ग्रहण करूंगा, रात के समय कलकत्ते में रहने लगूंगा—तब जानना शरीर छोड़ने का दिन समीप आ गया है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

स्वर्णमयी काशी में एक सप्ताह रुककर संतों का समुदाय इलाहाबाद की ओर चल पड़ा। मथुर बाबू भक्त थे किन्तु निर्बोध नहीं थे। जब उनका मन चलायमान होता तो रामकृष्ण उनसे सदैव एक ही बात कहते—

"बड़े फूल के खिलने में देर लगा करती है और सारवान वृक्ष भी देर से ही बढ़ते हैं।"

"गाय जिस प्रकार पेट भर चरने के बाद एक स्थान पर शान्ति

से बैठकर भोग वस्तुओं को उगल कर अच्छी तरह से चबाती या जुगाली करती है, उसी तरह तीर्थस्थान, देवस्थानादि के दर्शन के उपरान्त एकान्त में बैठकर मन में ईश्वरीय चिन्तन करना अत्यन्त ही आवश्यक है ।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

प्रयागराज में उन्होंने तीन रात निवास किया और पवित्र त्रिवेणी संगम में भी स्नान नित्यप्रति ही किया। शास्त्रीय विधान के अनुरूप श्री मथुर बाबू ने अपना भी मस्तक जब मुंडित कराया तो रामकृष्ण बोले—"मेरे लिए इसकी आवश्यकता नहीं है।"

प्रयागराज से वापसी में संत मंडली पुनः काशीधाम लौटी तथा एक पक्ष के बाद फिर वृन्दावन के लिए प्रस्थान करना था ।

काशीधाम में मथुर बाबू ने एक दिन मुक्त द्वार भोजन की व्यवस्था की जिसमें पंडित, विद्वान, संन्यासी आदि लोगों को अन्नदान किया और प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक वस्त्र और एक-एक रुपया दक्षिणा दी।

इसी प्रकार एक दिन रामकृष्ण की इच्छानुसार 'कल्पतरु' बनकर मांगने वालों की इच्छानुसार वस्तुओं का दान दिया गया। मधुकरी बांटते समय भिखमंगों और ब्राह्मणों के समुदाय को दान प्राप्त करते समय जब उन्हें आपस में झगड़ते और मारपीट करते देखा तो उनका हृदय दुखी हुआ, आंखों से आंसुओं की धार बह निकली। द्रवित मुद्रा में करुण कंठ से वे बोले—"माता, तू मुझे यहां क्यों लाई, इसकी अपेक्षा मेरा दक्षिणेश्वर में ही रहना क्या बुरा था ?"

"मनुष्य को अपनी देह, इन्द्रियों व आत्मा को निष्कपट, पवित्र, निष्कलंक, अक्षुण्ण व सृष्टि के आदिमतम व्यक्ति की तरह तरुण रखना चाहिए। और इसकी सफलता के लिए सबसे पहले ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करना चाहिए।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अचानक काशी की 'चौंसठ योगनी' गली में एक 'मोक्षया' नामक स्त्री के यहां भैरवी ब्राह्मणी से उनका पुनः मिलन हुआ जहां से वह श्री रामकृष्ण के साथ वृन्दावन के लिए भी साथ गई। वे राधा कुंड और श्याम कुंड भी पहुंचे।

बृज का स्वाभाविक सृष्टि-सौन्दर्य, फलफूलों से सुशोभित गोवर्धन गिरि, वन में निःसंकोच भाव से नाचते मोरों की टोली और इर्द-गिर्द कूदते-फांदते मृगछौनों ने उनके सरल हृदय को जैसे मोह लिया था। बांके-बिहारी श्रीकृष्ण का दर्शन करते समय ये एकाएक मूर्ति का आलिंगन करने दौड़ पड़े। एक शाम गोपों के बालकों को जंगल से गाय चराकर लौटते समय उनको गोपाल कृष्ण के दर्शन हुए। श्रीकृष्ण की अगणित स्मृतियों से जुड़ा पवित्र स्थल उनके हृदय में व्याकुलता भर उन्हें प्रेमानन्द में डुबो देता।

वृंदावन में उनकी भेंट एक वैष्णव भक्तिन गंगा माता से भी हुई जो अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए विख्यात थी। उसने एक ही दृष्टि में रामकृष्ण की महानता स्वीकार कर उनके दर्शनलाभ से धन्य समझा।

"जब कमल खिलता है तब मधुमक्खियां आकर स्वयं मधु संचय करती हैं। चरित्र के कमल को स्वाभाविक रूप से विकसित होने दो।"

"मधुमक्षिकाओं को भी अपने हृदय का मधुपान करने दो परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि तुम्हारे हृदय का सौंदर्य उनमें से किसी को अपना गुलाम न बना दे।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

वृन्दावन में रामकृष्ण करीब 15 दिन रहे और वहां से मथुरा भ्रमण करने के लिए भी वे गए।

जब बनारस लौटे तो मथुर बाबू ने उन्हें गयाधाम चलने की इच्छा प्रकट की किन्तु उन्होंने मना कर दिया। वे बोले—"गया में ही मेरे पिता से स्वप्न में श्री गदाधर ने कहा था कि मैं तेरा पुत्र होकर जन्म लूंगा। इसी कारण मेरे पिता ने मेरा नाम 'गदाधर' रखा था। वहां जाकर मेरी मनोदशा अतिरंजित हो अधिक प्रेमोन्मत्त भी हो सकती है, इसलिए वहां दर्शन करने जाना उचित नहीं है।" इसके पश्चात् वे श्री चैतन्यदेव के जन्म-स्थान नवद्वीप भी गये। नवद्वीप के समीप के किनारे भूमि रेतीली है, वहां भावावेश में उन्होंने कहा—"श्री चैतन्यदेव का पुराना नवद्वीप गंगा में डूब गया है और उसका वही स्थान इस रेतीली जगह के नीचे होना चाहिए,

इसीलिए मुझे यहां भावावेश हुआ—"दो बालक—प्रथम देखने में सुन्दर, मनोहरणीय और दूसरा श्याम वर्ण कान्ति वाले—उम्र 13-14 वर्ष, उन्नत ललाट तेजोमय आकृतियां अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये आकाश मार्ग से मेरी ओर बढ़ रहे हैं। दृश्य देखते ही मैं चिल्ला उठा—'देखो मैं आ गया, मैं यहां आ गया हूं।' तभी दोनों मुस्कराते हुए मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गए और मैं समाधिस्थ हो गया।"

बारह

समकालीन महान् विभूतियां

"जब मैं परमसत्ता की निष्क्रिय रूप में कल्पना करता हूं—जब वह सृष्टि निर्माण नहीं करती, रक्षा नहीं करती, अथवा ध्वंस नहीं करती तब मैं उसे ब्रह्म अथवा निराकार भगवान् कहता हूं। जब मैं उसकी सक्रिय रूप में कल्पना करता हूं अर्थात् जब वह सृष्टि करती है, रक्षा करती है, ध्वंस करती है तब मैं उसे माया, शक्ति या प्रकृति—साकार भगवान कहता हूं। परन्तु इनकी विभिन्नता का अर्थ पृथकता नहीं है।

साकार तथा निराकार एक ही सत्ता है। यह उसी प्रकार एक है जैसे दूध और उसकी धवलता, हीरा और उसकी चमक अथवा सर्प और उसकी वक्रता। एक के बिना दूसरे का विचार ही असम्भव है।

मां और ब्रह्म दोनों एक ही हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

जिस समय देश में श्री परमहंस के नक्षत्र का उदय हुआ, भारत में अन्य बहुत-सी महान विभूतियां अपने-अपने क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निर्वाह करती हुई समाज की कुरीतियों से संघर्ष कर रही थीं।

श्री रामकृष्ण ने ऐसे समय उन समस्त चिन्तकों एवं लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों से सम्पर्क बनाया तथा उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों का

अध्ययन करने की चेष्टा की ।

श्री रामकृष्ण में किसी की आलोचना करने की रुचि न होती किन्तु उनकी गंभीर अन्तर्भेदी दृष्टि शक्ति इतनी तीक्ष्ण और पैनी थी कि व्यक्ति उनके व्यंग्यपूर्ण संक्षिप्त उत्तर से नतमस्तक हो जाता क्योंकि उनमें द्वेष व ईर्ष्या की भावना लेशमात्र न थी ।

मथुर बाबू के सहपाठी का नाम देवेन्द्रनाथ टैगोर था जिनकी ख्याति सुनकर रामकृष्ण ने उनसे साक्षात्कार किया । उन्हें लगा उनके जीवन में योग-भोग साथ-साथ चल रहे हैं ।

पहली मुलाकात में ही उन्होंने देवेन्द्रनाथ को अपनी छाती खोलकर दिखाने के लिए कहा । देवेन्द्रनाथ की छाती परीक्षण के बाद छाती की रक्तिमा में विशेष लक्षण देखे ।

उन्होंने कहा -- "आप इस युग के राजर्षि जनक हैं । संसार से सम्बन्ध रखते हुए भी आपने उच्चतम उपलब्धि प्राप्त कर ली । आपका शरीर संसार में है परन्तु आपका मन भगवान के ऊर्ध्वलोक में है । मुझे भगवान के विषय में कुछ उपदेश देने की कृपा करें ।"

देवेन्द्रनाथ ने कुछ देर अतिथि को देखा और उन्हें अपने घर भोजन करने का निमन्त्रण देते हुए कुछ वेदमंत्रों को सुनाया । तत्पश्चात् रामकृष्ण से बोले—"किन्तु अपने बदन को कुछ ढककर आएं ।"

"जब तक हम इस संसार के एक अंश हैं और उससे अपने ऐक्य-बोध की प्राप्ति के लिए उसकी वास्तविकता का कभी न बुझने वाला विश्वास (चाहे वह हमारे अपने ही दीपक में छुपा हुआ क्यों न हो) प्राप्त करते हैं, तब तक यह दावा करना कि संसार मिथ्या है, सर्वथा बेहूदा है ।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण का उत्तर था—"मैं इसका आश्वासन नहीं दे सकता । मैं तो जैसा हूं, वैसे ही आऊंगा ।" और मुस्कराकर बैठक से उठ खड़े हुए । दूसरे दिन प्रातःकाल प्रतिभाशाली विभूति ने संक्षिप्त पत्र लिखा कि वे घर आने का कष्ट न करें । अर्थात् महान विभूति की सहृदयता, विनम्रता आदर्शवादी स्वर्ग की सुरक्षित गुफा में विलीन हो गई ।

उस समय उत्तर हिन्दुस्तान के अनेक बड़े शहरों में धार्मिक आन्दोलनों का जोर था। कलकत्ता और निकटवर्ती इलाकों में हरिसभा एवं ब्रह्म-समाज की हलचल, संयुक्त प्रांत में दयानन्द सरस्वती का अभूतपूर्व वैदिक धर्म का प्रचार तथा बंगाल में राधास्वामी सम्प्रदाय और वेदान्तियों के धार्मिक आन्दोलन चल रहे थे।

"ओ३म् ! तुम हमारे पिता हो ! हमें ज्ञान दो, हमें विनाश से बचाओ !

हे प्रभु ! हमें असत्य से सत्य की तरफ, अंधकार से प्रकाश की तरफ और मृत्यु से अमरत्व की तरफ ले चलो ! हमारी आत्मा के अन्दर प्रविष्ट हो जाओ ! हे भयंकर प्रभु ! अपने करुणामय मुखमंडल के द्वारा हमेशा हमारी रक्षा करो !"

(ब्रह्मसमाज की प्रार्थना)

1971 के जुलाई मास में रामकृष्ण जी को सूचना मिली कि मथुर बाबू टाईफाइड ज्वर से पीड़ित हैं। बोलने में कष्ट अत्यधिक था। सात दिनों तक चिकित्सा की प्रत्येक प्रणाली का उपयोग हुआ किन्तु सब व्यर्थ। उनका अन्त समय आया देख उन्हें कालीघाट पहुंचा दिया गया। 16 जुलाई 1971 को दोपहर को रामकृष्ण समाधिमग्न होकर बैठे। उनका स्थूल शरीर अपने कमरे में ही दक्षिणेश्वर मन्दिर में रहा परन्तु उनका दिव्य शरीर अपने परम भक्त के पीछे खड़े हो, ज्योतिर्मय मार्ग से—अत्यधिक पुन्य से प्राप्त स्वर्गलोक में चढ़ाने में व्यस्त रहा।

उन्होंने जब 5 बजे सायं समाधि तोड़ी तो हृदय को पुकार उन्होंने कहा - "श्री जगदम्बा की सखियों ने मथुर को बड़े आदर से दिव्य रथ पर चढ़ाया। अब मथुर देवलोक चला गया है।"

दूसरी विशिष्ट विभूतियों में श्री केशवचन्द्र सेन का नाम उल्लेखनीय है जो 1875 में ब्राह्म-आन्दोलन के सर्वश्रेष्ठ नेता थे। केशव की धर्म-परायणता के संदर्भ में बहुत कुछ सुनने पर रामकृष्ण की इच्छा उनसे मिलने की हुई।

एक दिन सायंकाल हृदय के साथ वे केशव से मिलने दक्षिणेश्वर के समीप उनके निवास-स्थान पर गए जहां वे अपने अनुयायियों के साथ

ध्यानरत थे। थोड़ी देर बाद रामकृष्ण ने उनसे विनम्रता से कहा—"मैंने सुना है आपने ईश्वर को देखा है, इसीलिए मैं उनके बारे में आपसे सुनने आया हूं।" केशव ने अपने भक्तों सहित पहले कोई विशेषता लक्ष्य नहीं की थी।

केशव ने कहा--"सारे ही सत्य सबके लिए समान हैं, क्योंकि सारे सत्य भगवान के ही सत्य हैं। सत्य जिस प्रकार यूरोपीय नहीं, उसी प्रकार वह एशियायी भी नहीं, वह जैसा केवल तुम्हारा नहीं है, उसी तरह वह केवल मेरा भी नहीं है।" केशव का कद लम्बा, मुख डिम्बाकार और रंग गौरवर्ण था। उस युवा ब्रह्मसमाजी के चातुर्यपूर्ण तर्क से वे प्रभावित हुए —जैसे उनके कांटे में ही मछली फंसने जा रही थी।

वे काली का एक प्रसिद्ध स्तोत्र गाने लगे और बीच में ही भावाविष्ठ हो गए।

"ओ३म्! ब्रह्म! सत्य! ज्ञान! अनन्त! वह अमर है, वह प्रकाशमान है, वह शान्तिमय है, आनन्दमय है, वह सत्य है, वह अद्वितीय है।

हे परम पुरुष! हे समस्त विश्व के आदि कारण! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं···हे ज्ञान के प्रकाश के दाता! हे सकल विश्वों के धारण करने वाले प्रभु! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।"

(ब्रह्मसमाज की प्रार्थना)

रामकृष्ण ने केशव से व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहा—"केशव, तुम नरम दल के मूर्तिपूजक हो?"

केशव ने प्रश्न किया—"कैसे···,—हम मूर्तिपूजक हैं?"

उनका उत्तर था—"भगवान के समस्त गुणों की गिनती प्रार्थना में क्यों करते हो? क्या एक पुत्र अपने पिता को कभी यह कहता है कि 'ऐ पिता! तुम्हारे पास इतने मकान, इतने बगीचे व इतने घोड़े हैं, इत्यादि?' पिता के लिए अपने पुत्र के हाथों समस्त सम्पत्ति दे देना स्वाभाविक ही है। तुम यदि भगवान व उसके गुणों को असाधारण वस्तु समझते हो तो न तो उसके निकट पहुंच सकते हो और न उससे घनिष्ठता सम्पादन ही कर पाओगे। यह मत समझो कि वह तुमसे दूर है। अगर तुम उसे अपने

निकटतम समझोगे तभी वह तुम्हें अपना स्वरूप उद्घाटित करेगा।...क्या तुम यह नहीं समझते कि तुम उसके गुणों पर मंत्रमुग्ध हो भावाविष्ठ यदि होते हो तो निश्चित ही मूर्तिपूजक हो।"

केशव और उनके अनुयायियों को रामकृष्ण मंत्रमुग्ध कर चुके थे।

उन्होंने फिर आगे कहा—"कुछ अंधे एक हाथी के निकट पहुंचे और उसे अपनी इच्छानुसार निहारते रहे। तभी एक अन्य व्यक्ति ने उन लोगों में प्रत्येक से हाथी की आकृति के संदर्भ में पूछा। जिसने हाथी का पैर पकड़ा, वह बोला—'हाथी खम्बे जैसा है।' दूसरे ने कान पकड़ा था, बोला—'हाथी सूप जैसा है।' इसी प्रकार जिसने हाथी का पेट और सूंड पकड़ी उसने हाथी के सम्बन्ध में अलग राय दी। ठीक यही बात ईश्वर पर भी लागू होती है—हर व्यक्ति उसे अपने अनुभव के अनुसार ही देखता है।"

केशव स्वयं एक प्रभावशाली वक्ता, उद्भट विद्वान्, महान् विचारक थे, किन्तु रामकृष्ण के प्रेरणादायक उपदेश सुन शिशु के समान उन्होंने भी शिष्यता ग्रहण कर ली।

"औषधियां कितनी भी अच्छी हों पर रोग का ठीक ठीक निदान हुए बिना वे कुछ काम नहीं देतीं। वैसे ही उपदेश कितने ही अच्छे हों, पर शिष्यों की ठीक-ठीक परीक्षा किए बिना उनका प्रयोग निरर्थक है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

केशवचंद्र इसके उपरान्त अपने कुछ भक्तों सहित उनसे आध्यात्मिक ज्ञानचर्चा में भाग लेने प्रायः मन्दिर में आ जाते। एक दिन रामकृष्ण ने एक दृष्टान्त सुनाया—"एक दिन एक व्यक्ति जंगल से गुजर कर जब गांव में आया तो उसने एक गिरगिट को देखा। चौपाल पर बैठ अपने साथियों से विस्मयपूर्वक वह बोला—'आज मैंने झाड़ के नीचे एक लाल रंग के गिरगिट को देखा है।'

दूसरे ने दृढ़ता से कहा—'मैं तो तुमसे पहले वहां से निकला था, गिरगिट लाल नहीं हरे रंग का है। मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है।'

इस पर तीसरा बड़ी गम्भीरता से बोला—'मैं अच्छी तरह जानता हूं, मैंने तुम दोनों से पहले उस गिरगिट को देख रखा है। वह न लाल था और न हरा। मैंने अपनी दोनों आंखों से देखा है—वह नीला था।' इसी

प्रकार कुछ श्रोता उसे पीला, किसी ने भूरा और कुछ सिलहटी बताते हुए अपनी सच्चाई सिद्ध करने के लिए आपस में झगड़कर मारपीट पर उतारू हो गए।

पास से गुजरते हुए एक दूसरे गांव के व्यक्ति ने जब विवाद का कारण जान लिया तो उसने कहा—'मेरी बात सुनो, वह झाड़ मेरे गांव का ही तो है जहां मैं रहता हूं और उस गिरगिट को मैं अच्छी तरह जानता और पहिचानता हूं। तुममें से प्रत्येक सही है—वह गिरगिट कभी हरा रहता है, कभी नीला और कभी लाल तो कभी पीला। क्रम से वह सब रंग बदलता रहता है और कभी-कभी तो उसका कोई रंग ही नहीं रहता।' सभी ने उसके विचारों का रसास्वादन किया।"

"मन में वासनाओं का लेशमात्र अवशेष रहने पर साधना की उच्चावस्था का अधःपतन हो जाता है, इसीलिए साधकों को वासनाओं का समूल त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

एक दिन 'ट्रिब्यून' के सम्पादक नगेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने संस्मरण में लिखा—"मैं केशव जी की इच्छानुसार परमहंस के दर्शनों के लिए मोटर बोट द्वारा नदी मार्ग से रवाना हुआ। वह मोटर बोट उनके दामाद कूच-बिहार के महाराजा नृपेन्द्र नारायण भूप की थी जिनमें मैं भी एक दर्शक था। केशव के कुछ भक्त मेरे साथ थे।

दक्षिणेश्वर से रामकृष्ण अपने भानजे हृदय सहित नाव पर आ बैठे। नौका-डेक की पटरियों पर रामकृष्ण और केशव एक-दूसरे के सामने पालथी मारे बैठे थे। नौका जलप्रवाह के विपरीत दिशा में किनारा छोड़ तेजी से आगे बढ़ती लहरों की छाती रौंदने लगी। मैं केशव के बाजू बैठा था इसलिए हिलोरों के हिचकोले से उससे स्पर्श हो जाता था। वार्त्ता और प्रश्नों का दौर लगातार आठ घंटे उस मोटर बोट पर होता रहा। श्री रामकृष्ण आत्मविभोर हो केशव के निकट आते-आते उनकी जांघ और घुटने केशव की गोद में टिकने लगे। इस बीच केशव मुश्किल से दस-बारह वाक्य ही मुंह से निकाल पाये केवल प्रश्नों के रूप में और प्रमुख समाधान साधक रामकृष्ण थे। उस दिन उन्होंने केशव को बत-

लाया—"सृजन करने का अर्थ है भगवान के सदृश होना। जब तुम सत्ता के सार से पूर्ण हो जाओगे तो कुछ भी कहोगे सभी सत्य हो जायेगा।"

"मटर के दाने गले में भर लेने के बाद जैसे कबूतर को 'गटर-घुम्' आवाज करता देख कोई भी समझ बैठता है इसके मुंह में कुछ नहीं है पर गले को हाथ से दबाने पर पता चलेगा इसके मुंह में मटर के दाने ठूंस ठूंस कर भरे गए हैं। इसी प्रकार मूर्छा या सुषुप्ति में अपने अन्दर का 'मैं-बोध' विद्यमान रहता है, किन्तु मस्तिष्क रूप जिस यंत्र की सहायता से 'मैं' बोध का अनुभव कुछ देर के लिए जड़त्व को प्राप्त हो जाता है, मौन हो जाता है, पर उसकी वृत्तियां बनी रहती हैं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

स्पष्टतया केशवचन्द्र देशवासिओं की अन्तरआत्मा और विचारों से बिल्कुल दूर थे। भारत के तीस करोड़ देवता अथवा तीस करोड़ प्राणी, जिनमें देवताओं का मूर्तरूप पाकर भी समाज दिशा व पथ के ज्ञान से शून्य होता जा रहा था—वे उनके कट्टर विरोधी थे। उनकी मानसिकता यूरोप के ईसा व उनके आदर्शवाद से प्रभावित होने के कारण वे समाज को भारतीय ईसा के पदचिह्नों पर चलाना चाहते थे, किन्तु भारतीय जनता ने उन्हें नकार दिया था। सामाजिक क्षेत्र में राममोहन राय के अतिरिक्त भारतीयों की उन्नति के लिए उन्होंने भी अथक परिश्रम किया, किन्तु देश में राष्ट्रीय चेतना का उठता हुआ ज्वार इतना प्रबल था कि जनता ने उनकी विचारधारा को अनसुना कर के स्वामी दयानन्द सरस्वती की ओर आकर्षित होते चले गये।

केशव के अभिन्न शिष्य प्रतापचन्द्र मजुमदार थे जो उनकी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मसमाज के अध्यक्ष बने। वे आगे चल कर रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय में मणिलाल पारीख के समान विधिवत् दीक्षित हो ईसाई बन गये थे। उन्होंने यह माना था कि अगर केशव कुछ अधिक दिन और जीवित रह पाते तो वह निश्चित ही कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लेते।

"तू मेरी सेवा ठीक तरह से करता जा, यही तेरे लिए पर्याप्त है। तुझे दूसरी तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है।

मन को एकदम संकल्प-विकल्प रहित अवस्था में ले जाना

ही निर्विकल्प समाधि है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

ऐसे कट्टर ईसा के समर्थक केशव पर भी रामकृष्ण की आध्यात्मिकता का जादू इस प्रकार सिर चढ़कर बोला कि भगवान के विभिन गुणों के अभिव्यंजक के रूप में वे शिव, शक्ति, सरस्वती, हरि आदि नामों से भगवान को पुकारने लगे। जीवन की अन्तिम बेला में जब वे रुग्णावस्था के समय अपने कमरे में चारपाई पर लेटे थे तो रामकृष्ण स्वयम् उन्हें देखने पहुंचे। उन्हें ज्ञात हुआ कि वे प्रातः आज जगन्माता से बातें करते हुए रोने लगते हैं। रामकृष्ण तब आत्मविभोर मुद्रा में समाधिमग्न हो गये। कुछ क्षण बाद उनका मौन टूटा और वे सुन्दर फर्नीचरों व दर्पणों से सजे कमरे में स्थित सभी सामान पर नजर डालते बोलने लगे—"हाँ, कुछ समय पूर्व इन तमाम चीजों की जरूरत थी, परन्तु अब ये सब बेकार हैं।"···फिर स्वर गूंजे—"तुम स्वयम् मां यहां आ गई हो।···मां, तुम कितनी सुन्दर हो!"

"तुम बीमार हो, इसमे भी गम्भीर अर्थ है। तुम्हारे शरीर में से भगवान की खोज में अनेक भक्ति की लहरें गुजरी हैं, उसी का यह परिणाम है। भगवान एक माली के समान कीमती गुलाब के पौधों की जड़ों को चारों तरफ से खोदते हैं जिससे वह रात की ओस इच्छानुकूल पान कर सकें। इसी प्रकार बीमारी तुम्हारी जड़ों के चारों तरफ की मिट्टी को खोद रही है।"

केशव ने शान्ति के साथ रामकृष्ण की वाणी सुन आंखें खोल दीं और चारपाई से उतरकर पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने केशव को उठाकर गले से लगा लिया।

कहा जाता है कि मृत्यु से पूर्व केशव के अन्तिम शब्द मुंह से मात्र मां···मां··· ही निकले थे। केशव भारत और इंगलैंड दोनों देशों के श्रेष्ठ विचारकों में थे जिन्होंने पूर्व और पश्चिम को जोड़ा।

उस काल के भारतीय समाज के उच्च कोटि के सुधारकों में स्वामी दयानन्द का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वे ऐसे कर्मठ प्रतिभाशाली विचारक एवं निडर संन्यासी थे जिनका डंका भारत ही नहीं सारे विश्व में गूंजने लगा था।

अपने इर्द-गिर्द जिन्हें अज्ञान, अविश्वास, नैतिक शिथिलता, अनैतिक कुसंस्कार और घृणित मूर्तिपूजा के अतिरिक्त कुछ और दिखाई ही नहीं दिया। वे समाज की कुरीतियों को समूल जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे।

"ईश्वर के साथ कोई भी एक सम्बन्ध जोड़ लेने को भाव कहते हैं। किसी भी एक भाव को दृढ़ता से पकड़ उसका अनुसरण पर्याप्त है। ईश्वर भाव का विषय है, भाव के सिवाय उसका आकलन कैसे हो सकता है? इसी दृढ़ता से उसकी (ईश्वर की) उपासना-आराधना करनी चाहिए।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

उनका जन्म गुजरात प्रान्त की काठियावाड़ रियासत में मोरवी नामक स्थान पर एक धनी ब्राह्मण परिवार में हुआ था और नाम था मूलशंकर। बाल्यकाल पिता के कठोर नियमानुकूल बन्धनों में व्यतीत हुआ, किन्तु 14 बर्ष की उम्र में शिवरात्रि के महापर्व के दिन एक चूहे को बिल से निकल शिव की मूर्ति पर उत्पात मचाते और देवता के प्रसाद को खाते देख उनकी आस्था भंग हो गई। इस कांड ने मूलशंकर को विद्रोही बना दिया और उन्होंने किसी भी धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने से भविष्य में मना कर दिया। पिता-पुत्र में संघर्ष गहरा गया जब उन्होंने विवाह सम्बन्धी पिता के प्रस्ताव को ठुकराकर अपना घर त्याग दिया।

उस समय उनकी अवस्था 19 वर्ष की थी। अचानक पता लगने पर पकड़े गये। चौकसी बढ़ा दी गई लेकिन वे फिर मौका पाते ही 1845 में सदा के लिए घर से भाग निकले और फिर कभी पिता से नहीं मिले। गेरुए वस्त्र पहिन भिक्षा द्वारा यात्रा करते हुए ज्ञानियों और तपस्विओं से योग, दर्शनशास्त्र और वेदों का गहन अध्ययन करने के लिए उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों, प्रान्तों और तीर्थस्थलों का भ्रमण किया। अन्त में उन्होंने 1860 में मथुरा के एक वृद्ध, जन्मान्ध तपस्वी स्वामी विरजानन्द सरस्वती को गुरु बना लिया। स्वामी दयानन्द ने अपने कठोर संयमी और क्रोधी गुरु की ढाई वर्ष शिष्यता की।

उन्होंने अपने गुरु को वचन दिया कि वे समाज के प्राचीन धर्म-विश्वासों में प्रविष्ट रुढ़िगत कुसंस्कारों को समूल नष्ट करेंगे तथा सत्य

के प्रचार में अपना सारा जीवन बिता देंगे। वे अत्यन्त बलिष्ठ, निर्भय और बालब्रह्मचारी होने के साथ संस्कृत व वेदों के प्रकाण्ड पण्डित एवं तर्कशास्त्री भी थे। वाणी में सिंह सरीखी गर्जना थी जो अपने विचारों को ही एक मात्र सत्य विचार मानते हुए उनके विरुद्ध समस्त विचारों को असत्य प्रमाणित कर देते थे।

"माया ईश्वर की है और उसी में सदा रहती है तो भी ईश्वर इससे आबद्ध नहीं हो जाता। यही देखो न, सर्प के मुंह में सदा विष रहता है, पर वह उस विष से कभी नहीं मरता—वह जिसको काटता है वही मरता है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

सन् 1869 में सनातन हिन्दुओं के चुने लगभग 300 तर्कशास्त्रियों और विद्वान पंडितों के मुकाबले वे घण्टों अकेले ही निर्भीक शास्त्रार्थ करते रहे।

कई बार उनकी हत्या करने की चेष्टा भी की गई। एक बार उनकी सभा में एक क्रोधित दर्शक ने एक विषधर सांप मुख पर फेंका जिसे उन्होंने तत्काल कुचलकर मार डाला और भाषण करते रहे। ऐसे कर्मठ, निर्भीक, आत्मविश्वासी थे स्वामी दयानन्द सरस्वती।

उन्होंने अपने धुआंधार भाषणों से प्रमाणित कर दिया कि वेदान्त के जिस रूप का प्रचार किया जा रहा है वह प्राचीन वेद-शास्त्रों के विरुद्ध है। विवाह को अविच्छेद मान विधवा विवाह को उन्होंने शास्त्रसम्मत प्रमाणित करते हुए बाल-विधवाओं की दयनीय स्थिति को सुधार समाज में नये परिवर्तन का सूत्रपात किया। 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना कर लोगों को वेदों के सच्चे अर्थों से अवगत करा उनके कुत्सित विचारों का सर्वनाश किया। अस्पृश्यों के पददलित अधिकारों का समर्थन कर उन्होंने छुआछूत जैसी भयंकर बीमारी से ग्रसित लोगों को ईसाई धर्म की ओर झुकने से बचाते हुए उन्हें गले लगाया।

उनके हृदय में कुरान, बाईबल और पुराणों के लिए आदर नहीं था। उन्होंने अपने उपदेशों में घोषणा की कि दुष्ट पुरुष चाहे कितना भी बलशाली चक्रवर्ती राजा ही क्यों न हो उसका विरोध करो, उसे गिराकर समूल नष्ट कर दो। अन्याय सहन मत करो। भाग्य कर्मों का परिणाम है इस-

लिए कर्मशील जीवन जीओ। आत्मा एक स्वतंत्र सत्ता है जो अपनी इच्छानुसार कार्य करने में स्वतंत्र एवं सक्षम है और कर्मफल ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। ऐसा कर उन्होंने ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रचार को रोकने का सर्वप्रथम प्रयास किया। किन्तु स्वामी जी रामकृष्ण को अधिक प्रभावित नहीं कर पाये।

"ईश्वर साकार भी है और निराकार भी, जैसे पानी और बर्फ। जैसे पानी का आकार नहीं रहता, पर बर्फ का रहता है। ठण्ड के कारण पानी बर्फ हो जाता है वैसे ही भक्ति रूपी ठण्डक के अखण्ड-सच्चिदानंद सागर में स्थान-स्थान पर साकार बर्फ जम जाता है।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

स्वामी जी 15 दिसम्बर, 1872 से 15 अप्रैल, 1873 में प्रचार हेतु कलकत्ते में ही रहे जहां ब्रह्मसमाज में उनका हार्दिक सत्कार किया गया और रामकृष्ण जी से भी पुनः भेंट हुई।

इससे पूर्व 1872 के अन्त में जब श्री रामकृष्ण पहली बार स्वामी दयानन्द से मिले उस समय तक उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना नहीं की थी। रामकृष्ण ने उस समय उनकी भी छाती खुलवाकर जब परीक्षा ली तो उन्होंने उनमें भगवान के प्रति बहुत ही क्षीण शक्ति का अनुभव किया। उन्होंने स्वयम् स्वामी दयानन्द को केशव का प्रतिवाद करते उत्तेज़ित और रोषपूर्ण शब्दों में सुना था—"परमात्मा ने जब संसार के इतने सारे पदार्थ बनाये थे तो क्या वे देवताओं को नहीं बना सकते थे?"

रामकृष्ण की दृष्टि में स्वामी दयानन्द दिन-रात धर्मशास्त्रों के वाद-विवादों के बारे में उनके अर्थों को तोड़ने-मरोड़ने के अभ्यस्त रहे। अपने विचारों को वे दूसरों पर लादकर तर्क द्वारा प्रभावित करने की कुचेष्टा करते और मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी एवं अनेकेश्वरवाद के प्रबल शत्रु थे। वे क्रोधी व्यक्तित्व के धनी होने के कारण भगवत्प्रेम की भक्तिपूर्ण भावना को दूषित करने वाली मनोवृत्ति से ग्रस्त थे। इसीलिए वे उनसे दूर रहे।

इधर ब्रह्मसमाज के तत्कालीन अन्य नेता जो रामकृष्ण के घनिष्ठ सान्निध्य से लाभान्वित हुए, उनमें प्रतापचन्द्र मजुमदार, विजयकृष्ण

गोस्वामी, त्रैलोक्यनाथ सान्याल एवं पं० शिवनाथ शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं। दूसरी ओर रामकृष्ण को भी बंगाल के शिक्षित समुदाय के साहचर्य ने उनके मनोभावों को भलीभांति जनता के अन्त:स्थल में प्रवेश कर प्रचारित करने में प्रमुख साधक बने। वास्तव में ब्राह्म-भक्तों की निकटता ले उन्हें समाज में हवा के प्रवाह की जानकारी मिली जिससे ज्ञात हुआ कि पश्चिमी दार्शनिकों का प्रभाव लोगों पर भारत के संतों और महापुरुषों की अपेक्षा अधिक होने के कारण हिन्दू धर्म के पुरातन सत्यों को पूर्णतया आत्मसात् करने में कठिनाई होगी।

"काई से ढंके तालाब के किनारे खड़े होकर 'तालाब में पानी नहीं है' कहने से क्या लाभ है? पानी पीना है तो काई को दूर हटाना आवश्यक है। वैसे ही ईश्वर-दर्शन के लिए मायावी काई को परदे की तरह दूर हटाना होगा।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अत: उन्होंने अपनी अनुभूतियों का वर्णन ब्राह्मों से करते हुए उपदेशों का केवल सार समझाया—त्याग की आवश्यकता, ईश्वर में अटूट आस्था, संसार में निष्काम भाव से स्वधर्म पालना, अपने आदर्शों के प्रति सच्ची लगन तथा सत्-असत् के विचारों में पूर्णता। इसके पीछे भी उन्होंने ईश्वर का ही हाथ जानकर अपना सर्वस्व समाज की जागृति के लिए होम दिया।

"माया पहचान में आते ही स्वयं दूर हट जाती है। जैसे मालिक को उसके घर में घुसने का पता चल गया है, यह जान कर चोर भाग जाता है, वही हाल माया का है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उनका आध्यात्मिक संदेश धीमे-धीमे उस समय के सुविख्यात व्यक्तियों के विशाल दायरों में भी प्रवेश कर गया जिनमें पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, माइकेल मधुसूदन दत्त, पंडित शशधर तर्क चूणामणि कृष्णदास पाल, अश्विनी कुमार दत्त तथा राजेन्द्रलाल मित्र के नाम प्रमुख थे।

तेरह

संत-समागम

दक्षिणेश्वर काली-मन्दिर में संध्या समय जब आरती के समय घण्टा और शंखध्वनि का स्वर आकाश में गूंजता तो वे उद्यानवाटी के छत पर चढ़ जाते और व्याकुल हृदय से अपने भक्तों से मिलने के लिए आतुर हो चिल्लाने लगते—"अरे बच्चो, तुम कहां हो ?···आओ मेरे पास आओ। तुम्हारे बिना मेरा जीना दूभर होने लगा है।" यह व्याकुलता जिस प्रकार मां अपने शिशु के लिए, मित्र अपने सखा के लिए और प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए बेचैनी से मिलने के प्रतीक्षा में तड़पने लगती है—उसी तीव्रता से वे भक्तों के दर्शनो के लिए लालायित हो उठते।

"मां यदि पतित भी हो तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए। जब तक मां-पिता अभावग्रस्त व दुखी हैं, तब तक भक्ति के अभ्यास से कोई लाभ नहीं है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

रविवार के दिन उनका छोटा-सा कमरा भक्तों से खचाखच भरा रहता। आगन्तुकों में रामचन्द्र दत्त और मनमोहन मित्र दोनों चचेरे भाई थे जिन्हें रामकृष्ण के दर्शनों में अभिनव निश्छल प्रेम की आभा ने अपनी ओर आकृष्ट किया। रामचन्द्र दत्त कलकत्ता मेडिकल कालेज में प्राध्यापक थे जिनके साहचर्य और संसर्ग में रहने वाले अनेक मित्रों और स्वजनों की संख्या दिन-प्रतिदिन भक्तों के रूप में बढ़ती चली गई।

धीमे-धीमे आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हुए उनके श्रद्धालु भक्तों की भीड़ भ्रातृभाव के सूत्र में बंधती चली गई और इस प्रकार का संत समागम उत्सव के रूप में प्रसार पाता चला गया। रामचन्द्र दत्त के भाई सुरेन्द्रनाथ मित्र जो एक अंग्रेज फर्म में महत्त्वपूर्ण पद पर कार्यरत थे और बड़ी ही स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति थे, रामकृष्ण के उपदेशों से इतने प्रभावित हुए कि उनका जीवन-दर्शन ही बदल गया। उन्होंने रामकृष्ण की सुख-सुविधा के लिए तन, मन, धन से सेबा करने का जीवन में संकल्प ले लिया था। जिन्होंने उनकी मृत्यु पश्चात् बराहनगर मठ का संचालन कार्य बड़ी लगन और निष्ठा के साथ चलाया। ऐसे ही एक स्नेही शिष्य उड़ीसा के एक धनाढ्य जमींदार बलराम बोस थे जिनके कलकत्ते के बागबाज़ार स्थित निवास-स्थान पर प्राय: रामकृष्ण अन्य भक्तों की टोली में भजन कीर्तन और आध्यात्मिक उपदेश में समय बिताते।

उनके अभिन्न अन्तरंग भक्तों में कथामृत के लेखक महेन्द्रनाथ गुप्त भी थे जो मास्टर महाशय के नाम से प्रसिद्ध थे। दुर्गाचरण नाग ढाका के देवभोग ग्राम के निवासी थे जिन्हें वे नाग महाशय के नाम से पुकारते। ये रामकृष्ण के निकट अपने ध्यान और प्रार्थना में आशातीत सफलता न प्राप्त करने पर सम्पर्क में आये थे। गुरु के चरणों की धूल पा वे धन्य हो गये थे।

"जब कमल खिलता है तब मधुमक्खियां स्वयं आकर मधु संचय करने लगती हैं। चरित्र के कमल को स्वाभाविक रूप से विकसित होने दो।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

इसी प्रकार सैंकड़ों युवकों तथा धर्म के रसिकों और पिपासुओं ने उनकी सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों को अपने जीवन में मार्गदर्शन का सम्बल बना लिया था।

गिरीशचन्द्र उन दिनों बंगाली रंगमंच के एक सफल और श्रेष्ठ नाटककार थे जिनका नाम बंगाली रंगमंच के जनक के रूप में सुविख्यात था। उनके सम्पर्क में आने से पूर्व वे भौतिकवादी एवं निरंकुश जीवन जीने के पक्षपाती थे। यह अभिनेता उच्छृंखल, व्यभिचारी व कट्टर ईश्वर-विरोधी था। वह प्रथम साक्षात्कार के समय ही मदिरापान किये मिला

और रामकृष्ण का ऐसी दशा में अपमान भी कर बैठा, किन्तु उन्होंने उसे शान्त भाव से स्नेहपूर्वक कहा—"कम से कम तुम्हें परमात्मा के नाम पर ही मद्यपान करना चाहिए।"

मदहोश गिरीश ने आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से प्रश्न किया—"आपके ईश्वर यह कैसे जानते हैं कि मैंने मदिरापान किया है ? बगैर पीये उन्हें कैसे ज्ञान होगा ?"

"यदि वह मदिरापान न करते होते तो यह अस्तव्यस्त संसार किस प्रकार बनाते ?" रामकृष्ण की बातें अभिमानी गिरीश ने अबोध शिशु की तरह सुनीं और उन्हें अपने थियेटर में अभिनय दिखाने के लिए निमंत्रित करने लगा। रामकृष्ण ने एक बार उसे ऊपर से नीचे तक देर तक देखा—"वत्स ! तुम्हें आत्मविकृति का रोग है।" रामकृष्ण ने स्पष्ट कहा। अहंकारी गिरीश क्रुद्ध वाणी में उन्हें अपमानित कर चला गया किन्तु दूसरे दिन उनके चरणों में गिरकर क्षमायाचना की।

नम्रता से रामकृष्ण बोले—"दुष्कृत्यों से बचना एक निषेधात्मक गुण है, तुम्हें परमात्मा के निकट जाना चाहिए।"

"कमल के खिलने पर भ्रमरों को बुलाना नहीं पड़ता।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

गिरीश ने कभी आत्मसंयम और अनुशासनपालन नहीं किया था। उसने कहा—"ध्यान और प्रार्थना की अपेक्षा वह आत्महत्या करना अधिक पसन्द करेगा।"

"मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं चाहता केवल एक प्रार्थना भोजन से पहले और एक सोने से पहले कर लिया करो। क्या तुम यह भी नहीं कर सकते ?' रामकृष्ण ने उत्तर दिया।

"नहीं, यह असम्भव है। मुझे नियम-बंधन से घृणा है। ध्यान और उपासना तो बड़ी बात है, एक क्षण के लिए ईश्वर का विचार भी नहीं कर सकता।"

एक दिन वही गिरीशचन्द्र उस अव्यक्तिगत आत्मा के सम्मुख आत्म-समर्पण कर गया और अपने गुरु का अन्यतम श्रेष्ठ शिष्य बन गया। मरते समय उसके अन्तिम शब्द थे—

"प्रकृति का अज्ञान एक भयंकर आवरण है। हे रामकृष्ण, मेरे नेत्रों के आगे से इस आवरण को दूर कर दो। तभी मैं चैन से मर सकूंगा।"

इस अशिक्षित व्यक्ति के शिष्य प्राय: सब ही सुशिक्षित व्यक्ति थे। रामकृष्ण की पावन स्नेहिल धारा का रसास्वादन करने के निमित्त सैकड़ों निष्ठावान भक्तों का समूह उनके सारगर्भित भाषणों, उपदेशों और आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नित्यप्रति श्रद्धावश एकत्रित हो बढ़ता ही जा रहा था।

श्री रामकृष्ण की आत्मोपलब्धि ने उनको स्त्री-पुरुषों सम्बन्धी भेद-भावों से ऊपर उठा लिया था चूंकि उनके बीच वे अबोध शिशु की तरह सरल और निष्पाप थे। प्रत्येक स्त्री उनके सम्मुख स्वयं दिव्य जगन्माता का रूप थी।

महिला-भक्त नि:संकोच उनके समीप आध्यात्मिक निर्देशन और ईश्वरीय साधना ज्ञान प्राप्ति में सहायतार्थ आती ही रहतीं। महिला भक्तों के विचारों और मनस्थिति को तोल कर उनके भीतर श्रेष्ठ भावनाओं का संचार करने के लिए उन्हें वे काम-कांचन त्याग करने का परामर्श देते और ईश्वर-दर्शन के लिए कठोर संयमी जीवन में ध्यान लगाने का प्रयास कराते।

"जैसे कटहल काटते समय हाथ में तेल लगा लिया जाता है, उसी तरह (भक्ति रूपी) तेल लगा लेने से संसार में फिर न फंसोगे, लिप्त न होओगे।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उनकी कुछ महिला-भक्तों में योगीन मां, गोलाम मां, अघोरमणि देवी, लक्ष्मी मणि देवी तथा गौरी मां के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने विशुद्ध नि:स्वार्थपूर्ण प्रेम तथा पूर्ण आस्थावान शरणागति की भावना से उनके उपदेशों को अपने जीवन में उतारते हुए महिला जगत में जनजागृति का बिगुल बजाया।

श्री रामकृष्ण के दिव्य प्रेम के चुम्बकीय स्पर्श ने उनके जीवन को खरे सोने में बदल दिया था जिनके उपदेशामृत पान करने के लिए वे सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ पैदल ही कलकत्ते से दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में पहुंचकर प्रतिभाशाली महिला मंडल का संचालन करतीं। उनकी धर्म-

पत्नी शारदामणि एक आदर्श पत्नी ही नहीं वरन् अप्रतिम संन्यासिनी थीं जिनका जीवन ज्ञान और भक्ति योग एवं कर्म का अद्भुत समन्वय था। उन्हें आगे चलकर श्री मां के नाम से बड़े आदर के साथ भक्तों ने अपने गले लगाया।

"जिसका अन्तिम जन्म है, वही यहां पर आयेगा। ईश्वर को जिसने एक बार भी ठीक-ठीक पुकारा है, उसे अवश्य ही यहां आना पड़ेगा।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

जहां महिला-भक्तों, प्रतिष्ठित एवं ज्ञानी बुद्धिजीवियों का समुदाय रामकृष्ण की सरलता और सहजता से आकर्षित होता गया वहीं सभी जातियों और श्रेणियों के निरन्तर आगन्तुकों की भीड़ भी सदैव बड़ी अधीरता से उन्हें घेरे रहती। महाराजा, भिखारी, ब्रह्मसमाजी, ईसाई, मुसलमान, सिख, पंडित, कलाकार, धर्मविश्वासी, कर्मनिष्ठ व्यवसायी, बाल-वृद्ध आदि सभी उनके साहचर्य का लाभ उठाते हुए आध्यात्मिक भाषणों एवं उपदेशों से प्रभावित होते जा रहे थे। चौबीस घंटों में बीस घण्टे वे अपने अनुयायियों और श्रद्धालुओं के प्रश्नों के उत्तर देते-देते उनका स्वास्थ्य चरमराने भी लगा किन्तु वे निरन्तर समान भाव से अपने ज्ञान, सहानुभूति और अपनी अन्तरात्मा की अद्भुत शक्ति के माध्यम से लोगों को एक ही संदेश देना चाहते थे कि मनुष्य मात्र मनुष्य को समझे, एक-दूसरे के प्रेम में सच्ची सहानुभूति प्रकट हो और ऐसा कर समस्त मानव जाति अपने आपको एक सूत्र में बांध कर रख सकेगी। उनके उच्च आदर्श से अनुप्राणित, निष्ठावान, त्यागी एवं सेवाभावी आत्माओं का एक दल उनके सपनों को साकार करेगा—यह सच निकला।

उनका कथन था—"हमें नई बुनियाद पर इमारत खड़ी करनी है। हमें एक ऐसा जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार रहना होगा जो एक परमसत्ता का रूप धारण कर सके।"

"नदियां इसलिए उमड़कर भागती हैं क्योंकि उनका स्वामी विशाल पर्वत शान्त और स्थिर रहता है। हमें भी अपने हृदय में भगवान रूपी पर्वत को अटल और अडिग खड़ा करना है। जब हमें सफलता मिलेगी और वह खड़ा हो जाएगा तब उसमें से हमेशा के लिए समस्त मानव जाति के लिए

करुणा और प्रकाश की नदियां प्रवाहित होने लगेंगी।"

और इस प्रकार महान आत्मायें धीमे-धीमे एकत्रित होने लगीं। कुछ ऐसे उत्साही नवयुवकों का दल भी विशेष रूप से आगे बढ़ता चला आया जो अपना सर्वस्व त्याग कर संन्यास का व्रत लेकर दीक्षित होने लगा।

इनमें सर्वप्रथम दीक्षा ग्रहण करने वाले साहसी बिहार के छपरा जिले के एक निर्धन परिवार के व्यक्ति लाटू (स्वामी अद्भुतानंद) थे जिन्होंने छः वर्षों तक श्री रामकृष्ण की सेवारत रहकर उनके जीवन-काल में ही बड़ी आध्यात्मिक उपलब्धि अर्जित कर ली थी।

श्री राखाल घोष (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने श्री रामकृष्ण के दर्शन 1881 में दक्षिणेश्वर में प्राप्त किये जिन्हें रामकृष्ण अपने मानसपुत्र के रूप में देखते थे। वे बसीरघाट, 24 परगना के एक जमींदार के पुत्र थे। ये ही रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम अध्यक्ष हुए जिन्होंने आगे चल कर शिशु-संस्था को एक शक्तिशाली संघ के रूप में विकसित कर डाला था।

श्री गोपाल घोष (स्वामी अद्वैतानंद) एक कागज विक्रेता थे जो उम्र में बड़े होने के नाते रामकृष्ण उन्हें 'बूड़ो गोपाल' कह कर पुकारते थे।

पद्म-पत्र के समान जिसके नेत्र रहते हैं उसकी वृत्ति सात्विकी होती है। बैल के समान जिसकी आंखें हों उसमें काम प्रबल रहता है। योगियों की आंख आरक्त और ऊर्ध्व दृष्टि सम्पन्न रहती है। देव चक्षु बड़े नहीं होते पर उनकी लम्बाई अधिक रहती है। किसी से बोलते समय उसकी ओर विशेष रूप से निहारकर देखने की जिसकी आदत होती है वह साधारण मनुष्य से अधिक बुद्धिमान होता है।

—श्री रामकृष्ण परमहंस

शारदाप्रसाद मिश्र (स्वामी त्रिगुणातीत नन्द) उनके आश्रम-निवासी शिष्यों में से थे। 1902 में स्वामी विवेकानन्द के निर्देशन में बंगला पत्रिका 'उद्वोधन' का सम्पादन किया।

श्री निरंजन घोष (स्वामी निरंजनानन्द) असाधारण आध्यात्मिकता-सम्पन्न कर्मठ भक्त थे जिन्होंने अपने को निष्काम भाव से पूर्णतया रामकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया था। लेकिन उनका प्रेत विद्या

का भूत प्रेत-तत्त्वों से विश्वास उन्होंने हटा दिया था।

श्री शशिभूषण (परिवर्ती नाम—स्वामी रामकृष्ण नन्द) जिन्हें राम-कृष्ण पूर्व जन्म के ईसामसीह के अनुयायी भी कहते थे, एक विश्वासपात्र भक्त थे।

श्री तारकनाथ घोषाल (स्वामी शिवानन्द) एक वकील के पुत्र थे जो 23 परगना स्थित बारासात के सुप्रसिद्ध घोषाल परिवार के सदस्य थे, 1880 में प्रथम दर्शन प्राप्त करते ही रामकृष्ण के परम शिष्य बन ध्यान-साधना में रुचि लेने लगे थे। वे सन् 1922 में रामकृष्ण मठ के द्वितीय अध्यक्ष नियुक्त हुए।

श्री बाबूराम घोष (स्वामी प्रेमानन्द) एक बीस वर्षीय होनहार कल-कत्ते का छात्र जिसकी भेंट रामकृष्ण से 1882 में हुई। उनको छात्र के चरित्र की पवित्रता पर गर्व था जिसे उन्होंने 'नित्यसिद्ध' की कोटि में गिना। उसके आडम्बरहीन अपरिमित निश्छल प्रेम ने उनके हृदय-सिंहासन पर पदारूढ़ करा दिया था।

"अच्छी तरह परीक्षा किए बगैर मैं किसी को अपने शिष्य समुदाय में नहीं लेता।

किसको धर्मलाभ होगा और किसको कितना हुआ, इत्यादि सब बातें मुझे माता देती है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री योगीन्द्रनाथ राय चौधुरी (स्वामी योगानन्द) दक्षिणेश्वर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार से थे जो बाल्यावस्था से ही श्री रामकृष्ण के घनिष्ठ सम्पर्क में आये जिसें उन्होंने जगदम्बा के चुने हुए व्यक्तियों में से निरू-पित किया था।

श्री हरिनाथ चट्टोपाध्याय (स्वामी तुरीयानन्द) जिनकी कठोर तपस्या तथा अद्भुत सहनशक्ति ने एक महान योगी शिष्य के रूप में प्रतिष्ठित किया था। ये जाति से ब्राह्मण थे और इनके द्वारा लिखित पत्र और वार्त्तालाप संग्रह आगे चल कर आध्यात्मिक प्रेरणा का एक अचूक स्रोत बना।

श्री हरिप्रसन्न चटर्जी (स्वामी विज्ञानानन्द) रामकृष्ण के सम्पर्क में 1883 में उनके मित्र शरत् और शशि के द्वारा आये जब वे कॉलेज छात्र

थे। एक सफल इंजीनियर के रूप में महत्त्वपूर्ण सरकारी पद संभालने के पश्चात् उन्होंने संसार का त्याग कर दिया। सन् 1937 में स्वामी अखण्डानन्द की मृत्यु के बाद वे रामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष बने।

श्री शरतचन्द्र चक्रवर्ती (स्वामी शारदानन्द) कलकत्ते के एक धर्मनिष्ठ परिवार के सदस्य तथा स्वामी रामकृष्णानन्द के चचेरे भाई थे। दोनों को ही रामकृष्ण पूर्वजन्म में ईसामसीह के अनुयायी मानते थे। सन् 1883 में दर्शनों के बाद उनके चरणों की रज माथे पर लगा कर शिष्यता ग्रहण की। स्वामी शारदानन्द रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम सचिव नियुक्त हुए थे और अपने बंगला ग्रंथ 'श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग' के द्वारा प्रकाश में आये। मयलापुर, मद्रास का रामकृष्ण मठ तथा विद्यार्थी-गृह उनके तपस्वी निष्ठापूर्ण सेवा का जीता-जागता प्रमाण है जो सदा उनकी स्मृतियों को ताजगी देता रहेगा।

श्री कालीप्रसाद चन्द्र (स्वामी अभेदानन्द) एक अंग्रेजी भाषा के अध्यापक के पुत्र थे जिनका रामकृष्ण से साक्षात्कार 1883 में हुआ। वे वेदान्त के अप्रतिम विद्वान और आध्यात्मिक अनवरत साधना के कारण अपने प्रारम्भिक जीवन में 'काली तपस्वी' के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे। उन्होंने अमेरिका में वेदान्त के संदेश को चारों दिशा में प्रसारित करने का जी तोड़ कर प्रयास किया।

"कांच की अलमारी के भीतर जैसे सब चीजें दिखाई देती हैं, उसी तरह मनुष्य के भीतर क्या है वह सब मुझको माता दिखा देती है। किसी मनुष्य की छड़ी से और किसी के छाते पर से मुझको उसका स्वभाव पहचान में आ जाता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री सुबोधचन्द्र घोष (स्वामी सुबोधानन्द) सन् 1885 में हाई स्कूल के सत्रह वर्षीय छात्र ने श्री रामकृष्ण के अलौकिक दर्शन एवं स्पर्श द्वारा अपार आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर ली थी। वे कलकत्ता के सुप्रसिद्ध ठनठनिया काली मन्दिर के संचालक श्री शंकर घोष के पारिवारिक सदस्य थे।

श्री गंगाधर घटक (स्वामी अखण्डानन्द) एक चौदह वर्षीय नवयुवक

विद्यार्थी के रूप में रामकृष्ण के दर्शन लाभ कर दीक्षित हुए। 1894 में सेवाकार्य आरम्भ कर स्वामी शिवानन्द की मृत्यु के पश्चात् 1934 में रामकृष्ण मठ तथा मिशन के अध्यक्ष बने।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कलकत्ता के संस्कृत कालेज के डायरेक्टर थे। एक समाज सुधारक के नाते उनका रामकृष्ण से अच्छा परिचय था। उनके मानव-प्रेम से प्रभावित लोग श्रद्धावश आदर से स्मरण करते थे। सन् 1864 के दुर्भिक्ष के ताण्डव नृत्य से लगभग लाख से ऊपर असहाय व्यक्तियों को काल का ग्रास बना देने के कारण उनका ईश्वर से कतई विश्वास टूट गया था। इसी आघात से पीड़ित विद्यासागर जी ने शेष जीवन मानव-जाति की सेवा में लगा दिया था। उनका कथन था कि "कायर पुरुष भय के कारण ही ईश्वर में विश्वास करते हैं। यदि भगवान मंगलमय हैं, इतने करुणामय भी, तो एक-एक अन्न के ग्रास के लिए लाखों आदमी भूख से क्यों मर रहे हैं?"

"भिन्न-भिन्न लोगों की शारीरिक बनावट जैसी भिन्न-भिन्न रहती है, वैसे ही उनके निद्रा-शौचादि व्यवहार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हुआ करते हैं। नींद में सभी को श्वासोच्छ्वास समान नहीं रहता। त्यागी लोगों का एक प्रकार का और भोगी लोगों का दूसरे प्रकार का होता है। शौचादि के समय भोगियों की मूत्रधारा बाईं ओर और त्यागियों की दाहिनी ओर जाया करती है। योगियों के मल को सूकर (सूअर) छूते तक नहीं हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री नरेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द) प्रारम्भिक दिनों में वीरेश्वर भी कहलाते थे जिनका जन्म 12 जनवरी 1863 को मकर संक्रांति के दिन कलकत्ता में हुआ था। पिता श्री विश्वासनाथ दत्त शहर के अग्रणी वकीलों में थे और माता का नाम भुवनेश्वरी। वे एक शिवभक्त सात्त्विक महिला थीं। उन्होंने एक दिन स्वप्न देखा कि साक्षात् शिव पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। जब उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, स्नेहवश उसका नाम वीरेश्वर रखा किन्तु घर में प्यार से उन्हें बिले नाम से सम्बोधित किया जाता।

बाल्यावस्था में ही वे अन्तर्मुखी तथा निर्भीक थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1881 में स्नातक बनने के पश्चात् उनमें आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की लालसा बड़ी बलवती हुई और 1883 में उनको श्री रामकृष्ण के दर्शन प्राप्त हो गये। उनके सतर्क मार्ग-दर्शन द्वारा सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त हुई। श्री रामकृष्ण की महासमाधि के उपरान्त इस महान शिष्य ने सारे गुरुभाइयों को अपने प्रेमपाश में बांध कर आध्यात्मिक सूत्र में पिरोया तथा उन संस्थाओं की नींव डाली जो आज रामकृष्ण मठ और मिशन के रूप में विकसित हैं।

"दुष्ट मनुष्य का हाथ भारी रहता है। नाक का चपटा होना अच्छा लक्षण नहीं। ज्ञानी होने पर भी सरल वृत्ति उसकी नहीं होती। हाथ कम लम्बा और बड़ी कोहनी रहना भी एक खराब लक्षण है। आंखें बिल्ली के समान कंजी होना अच्छा लक्षण नहीं है। वैसे ही टेढ़ी (तिरछी) आंख होना भी खराब है। एक आंख से अन्धा अर्थात् काना चाहे अच्छा भी हो, पर टेढ़ा मनुष्य बड़ा दुष्ट और खराब होता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उन्होंने भारत ही नहीं पश्चिमी देशों में हिन्दू धर्म का श्रेष्ठ प्रतिपादन किया। उनकी महान उपलब्धियों, उनकी ज्वलन्त देशभक्ति, भारत के दलितों के उत्थान हेतु निष्काम सेवा भाव तथा पूर्व और पश्चिम के बीच सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता की कड़ी बनकर संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों की श्रेणी में वे अग्रणी माने जाते हैं।

फरवरी 1882 में नरेन्द्र ने पुनः बड़ी व्यग्रता से भेंट की। रामकृष्ण ने अपने बगल में बुला पलक झपकते ही अपना दायां पांव शरीर पर रख दिया। पैर के स्पर्श से मन में नई अनुभूति जन्मी—नेत्र खुले थे। कमरे की दीवारें और उसमें रखी सभी वस्तुएं बड़ी तीव्रता से घूमने लगीं। समस्त ब्रह्माण्ड, अस्तित्व के साथ तेजी से घूमता हुआ सारी वस्तुओं को अपनी चपेट में लेने वाले एक शून्य में उभर रहा था। वह भयभीत हो चीख उठा—"अरे श्रीमन्! यह क्या, मेरे साथ आपने क्या

कर दिया ? मुझ पर माता-पिता तथा परिवार की बड़ी जिम्मेदारी है।"

स्थिति सामान्य होने पर अपनी तार्किक शक्ति से इस अनुभव को भ्रम सिद्ध करने का प्रयास किया, लेकिन संदेह के सागर में वह डूब गया।

चौदह

प्रिय शिष्य नरेन्द्र और श्री रामकृष्ण

"भाई को प्रेम करने की बात मत कहो। उसे अमल में लाओ। मतवाद व धर्म को लेकर वाद-विवाद मत करो। सब धर्म एक ही हैं। सारी नदियां समुद्र की तरफ जाती हैं। तुम भी उसी तरफ बहो, और दूसरों को भी बढ़ने दो। प्रत्येक महाप्रवाह भूमि के ढाल के अनुसार—जाति, समय और स्वभाव के अनुसार—अपने पृथक् मार्ग का निर्माण कर लेता है। परन्तु सारे प्रवाह ही जलप्रवाह हैं।…बढ़े चलो…समुद्र की तरफ बह चलो…बहे चलो !…"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण का अन्तःकरण अनुभूति द्वारा आत्माओं को निरीक्षण करने में सक्षम था। वे एक क्षण में ही पलक मारते भविष्य की धारा को जान लेते थे इसीलिए उन्होंने पहली नजर में आगन्तुक असाधारण शिष्य को समझ लिया था कि यह युवक ही उनके सपनों का उत्तराधिकारी राजकुमार है—वह था नरेन्द्रनाथ दत्त, नरेन, स्वामी विवेकानन्द।

गुरु बनाने से पूर्व शिष्य ने जिज्ञासा की दृष्टि से प्रश्न किया था—"क्या आपने भगवान के दर्शन किये हैं?"

"हां, वत्स ! मैंने भगवान को देखा है। मैं उसे भी उसी प्रकार देख पाता हूं जैसे अपने सम्मुख तुम्हें देख रहा हूं। केवल मैं भगवान को तीव्रतर अर्थों में देखता हूं। यदि तुम चाहो तो तुम भी उनके दर्शन कर सकते हो।"

श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया।

जब उन्होंने एक गीत गाने के लिए आग्रह किया तो नरेन आज्ञा का पालन कर मधुर गीत सुनाने लगा। वे अपने स्थान से उठे, नरेन को हाथ से पकड़ बरामदे में लाकर पीछे के दरवाजे को बन्द करते हुए बोले—"ओह, तू इतनी देर कर आया है? कितनी साध थी मेरे व्याकुल हृदय में कि किसी योग्य व्यक्ति को मन की बात कह डालूं और वह मेरे आन्तरिक अनुभवों को आत्मसात् कर ग्रहण कर सके।" और वे सुबकियां लेते-लेते उसके समाने हाथ जोड़ खड़े हो गये और फिर बोले—"प्रभु! मैं जानता हूं कि तुम नारायण के अवतार प्राचीन नर हो, और मनुष्यों के दुखों को दूर करने के लिए फिर पृथ्वी पर आए हो। प्रतिज्ञा कर, तू जल्दी मुझसे फिर मिलने अकेला आएगा।"

वह विस्मित हो उनके चेहरे पर उभरते भावों को देख मौन खड़ा कुछ क्षण निहारता रहा। मन में अन्तर्द्वन्द्व था, क्या परमात्मा की उपलब्धि सम्भव है? वह एक पागल हो सकता है परन्तु साधारण मनुष्य नहीं। अगर पागल है फिर भी श्रद्धा योग्य है।

दूसरी बार अकेला जब दक्षिणेश्वर मन्दिर के एकान्त में मिला था लगभग एक माह बाद, उसने उन्हें एक दिव्य पुरुष के चमत्कारी रूप में शंकालु दृष्टि से समझा—कोई वशीकरण विद्यानुरागी संत है, किन्तु सरल और स्नेहपूर्ण उसका व्यवहार मनमोहक लगा जिसे हृदय से चाह कर भी नहीं निकाल पाया था।

तीसरी बार रामकृष्ण जब उसे अपने उद्यान में साथ लिये चले, तो अपनी विचारशक्ति को पूर्णरूपेण जागृत किये, कदम से कदम मिलाते उसने गोष्ठी-भवन में प्रवेश किया।

संदेहपूर्ण दृष्टि से नरेन उन्हें एक टक देखे जा रहा था कि अचानक उन्होंने उसे छू लिया।

"भक्त माया का त्याग नहीं करता। वह महामाया की पूजा करता है। वह अपने आपको उसके चरणों में अर्पण कर देता है और प्रार्थना करता है—मां! मेरे मार्ग से हट जाओ। तुम्हारे ही मार्ग से हट जाने पर मैं ब्रह्म तक पहुंच सकता हूं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण के स्पर्शमात्र से उसके शरीर की समस्त चेतना शून्य हो गई। लगा जैसे रामकृष्ण उसकी छाती पर धीमे-धीमे प्रहार कर रहे हैं। वह लोहे के समान चुम्बकीय स्पर्श के निकट सिमटता चला गया; किन्तु वही एक मात्र ऐसा शिष्य था जो गुरु के प्रत्येक शब्दों को तौलता एवं संदेह भरी दृष्टि से देखता था। किन्तु तत्काल उसने निडरता से अपना पक्ष प्रस्तुत का दिया—"यदि लाखों व्यक्ति उन्हें परमात्मा कहें चिन्ता नहीं। वह बगैर प्रमाण के उनको कभी परमात्मा कह कर नहीं पुकारेगा।"

रामकृष्ण ने अन्य शिष्यों की ओर इशारा करते हुए सहास्य गंभीरता से उत्तर दिया—"किसी वस्तु को मेरे कहने के कारण ही स्वीकार नहीं करना चाहिए। स्वयं प्रत्येक वस्तु का परीक्षण आवश्यक है।"

"यदि भगवान वस्तुतः सत्य है तो उसका प्रत्यक्ष करना भी सम्भव होना चाहिए।" उसका प्रश्न रामकृष्ण के मर्म को बांध गया।

रामकृष्ण को लगा जैसे वह देखने में पूर्ण भक्त है और अन्दर से पूर्ण ज्ञानी जबकि वे सर्वथा उसके विपरीत हैं। वे इस धरोहर को खोना नहीं चाहते थे चूंकि भय था कहीं प्रशंसनीय चंचला बुद्धि कहीं पीछे अपने मार्ग से भ्रष्ट न हो जाये। "असम्भव कुछ नहीं है।" मुस्कराकर वे बोले।

प्रार्थना के समय ब्रह्मसमाज की सभा में नरेन को ढूंढ़ते एक दिन व्याकुल हो देख रहे थे कि दर्शकों ने इसे आलोचना का विषय बना निन्दा की।

"जिनमें बिषयबुद्धि प्रबल रहती है, जो कपट और धोखेबाजी के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं, जो अपने लाभ के लिए और अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए धर्म का केवल ढोंग रचकर लोगों को फंसाते हैं, ऐसे लोगों के द्वारा किसी खाद्य या पेय वस्तु के लेने के लिए जब मैं अपना हाथ आगे बढ़ाता हूं तो मेरा हाथ आगे न बढ़कर पीछे ही हटता है।"

—श्री राक्रृष्ण परमहंस

तभी नरेन ने आवेश में आकर अपना अपमान समझ उनसे तिरस्कृत मुद्रा में कहा—"किसी मनुष्य को कभी भी किसी के लिए इस प्रकार पागल नहीं होना चाहिए। यदि मुझसे इतना ही प्यार है तो निश्चित है आप एक दिन अपनी आध्यात्मिकता को अवश्य गंवा डालेंगे और मेरे स्तर के

होकर रह जायेंगे।"

नरेन के शब्दों से उन्हें आघात पहुंचा। स्नेहिल स्वर से उन्होंने उत्तर दिया—"ओ अभागे! मैं तेरी बात नहीं सुन सकता। मां कहती है कि मैं तेरे अन्दर भगवान को देखता हूं इसीलिए तुझसे इतना प्यार करता हूं। जिस दिन तेरे भीतर उसे न देख पाऊंगा, तुझे देखना मुझे स्वयं असहनीय हो जायेगा।" आहत नरेन क्रुद्ध हो घर लौट गये।

कई सप्ताह तक उनका एक-दूसरे से वार्तालाप साधारण, एकदम निर्लिप्त भाव से ही रहा। रामकृष्ण ने एक दिन उससे व्याकुल मुद्रा में पूछा—"जब वह उनके साथ बातें ही नहीं करता तो आता ही क्यों है?"

नरेन्द्र के उत्तर दिया—"मैं आपसे प्यार करता हूं इसीलिए देखने भर चला आता हूं, आपके शब्द सुनने के लिए नहीं आता।"

उन्होंने उससे फिर प्रश्न किया—"यदि तुम मेरी मां को नहीं मानते तो यहां आने का प्रयोजन ही क्या है?"

"भाइयो, साधु को दिन में देखो, रात में देखो और तभी उस पर विश्वास करो। साधु जैसा उपदेश दूसरों को देता है वैसा ही स्वयम् आचरण करता भी है या नहीं—इस बात का ध्यान रखो। जिसके कहने और करने में मेल नहीं है, उस पर कभी भी विश्वास मत करो।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

नरेन्द्र ने कहा—"क्या यहां आने के लिए मुझे उसे मानना होगा?"

रामकृष्ण ने मुस्कराकर कहा "अच्छा! कुछ समय ठहरो, उसे न केवल तुम मानोगे वरन् उसका मात्र नाम सुन कर रोने लगोगे।" रामकृष्ण नरेन्द्र के सम्मुख अद्वैत वेदान्त के द्वार खोलने के प्रयास में रत थे। उधर क्योंकि नरेन्द्र अन्य शिष्यों की टोली में व्यंग्यपूर्ण मुद्रा में कहते सुने गये—"यह लोटा भगवान है यह मक्खियां भगवान हैं।" तभी उन्होंने शिष्यों को उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार और हंसी के वातावरण को चीर कमरे में नरेन्द्र के निकट पहुंच उसे स्पर्श किया। और फिर...

उसी क्षण स्पर्शमात्र से एक आध्यात्मिक तूफान-सा शरीर में हलचल मचाता ऐसे बढ़ा कि आंखों में प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होने लगी। अन्त में मात्र ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रहा।

वह अवाक् हो ठगा-सा रह गया, मौन खड़ा।

वह घर वापिस लौट आया; परन्तु जिस वस्तु को वह छूता या उसे देखता व खाता वह सब कुछ भगवान ही था। उसने ऐसी उन्मत्त अवस्था में अपने सारे काम-काज छोड़ दिये। परिवार में हलचल हुई कि वह अस्वस्थ है, क्या मर्ज है उसका, किन्तु सभी चेष्टाएं और प्रयास विफल हुए। कुछ दिन में स्वप्न टूटा किन्तु उसकी स्मृतियों में शेष भगवान का अस्तित्व रहा।

रामकृष्ण यह भी सोचते थे कि उनके अन्दर भगवान का वास है, और भगवान उनके नश्वर शरीर के अन्दर छिप कर क्रीड़ा करते हैं।

"ईश्वरीय अवतार को समझना आसान नहीं है। यह ससीम व सान्त के ऊपर असीम व अनन्त की कीड़ा मात्र है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

हृदय के समुद्र में जब नरेन्द्र के ज्वार भरी तरंगें अपनी चरम सीमा छूने लगीं वह पागल सरीखा शिव…शिव…रटने लगा। रामकृष्ण ने करुणा-भरे स्वर में ढाढ़स बंधाया—"हां, मैं भी इसी दौर में 12 वर्ष गुजार चुका हूं।"

किन्तु 1884 शुरू ही हुआ था कि अचानक पिता के देहान्त के कारण छः-सात व्यक्तियों के परिवार का खर्च उसके निर्बल कन्धों पर आ पड़ा। उसने जीविकोपार्जन हेतु जी तोड़कर परिश्रम किया किन्तु असफलताओं के निरन्तर प्रहार से उसकी आत्मा का विद्रोह चीत्कार उठा—"यदि मनुष्य की ख्याति इतनी निर्बल आधार पर टिकी है, ऐसे झूठे कल्पनालोक को मैं लात मारता हूं, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।"

सभी दक्षिणेश्वर निवासी नरेन्द्र के मंडली में वापस लौटने की आशा छोड़ चुके थे, किन्तु रामकृष्ण उसके प्रति आशावादी थे। उन्हें विश्वास था कि मात्र उन्हीं के द्वारा नरेन्द्र की मुक्ति सम्भव है।

"शरीर धारण करने पर उसके साथ कष्ट, रोग और दुख लगे ही हुए हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

एक दिन परिवार के कष्टों से त्रस्त सड़क के किनारे एक घर के सामने भूखा-प्यासा ज्वर से पीड़ित नरेन्द्र का भूलुण्ठित शरीर ताप से जल

रहा था, तभी अनायास उसे लगा आत्मा को ढकने वाले जर्जरित पर्दे फट गये हैं और एक दैवीय प्रकाश प्रज्वलित हो उठा जिससे संदेह का आवरण स्वयं हट गया। मन और शरीर को शान्ति मिली। वह गर्व से कहने योग्य था—"मेरा भ्रम दूर हो गया, मैं देखता हूं, मैं जानता हूं, मुझे विश्वास है···ईश्वर है।" उस रात रामकृष्ण ने नरेन्द्र से दक्षिणेश्वर चलने का आग्रह किया और वह पीछे-पीछे साथ हो लिया। यह आकर्षण था।

रामकृष्ण बोले—"मुझे ज्ञात है तुम इस संसार में अधिक नहीं रह सकते। परन्तु, जब तक मैं इस संसार में हूं मेरे लिए तुम भी रहो।"

नरेन्द्र घर लौट आया। एक वकील के दफ्तर में एक दिन के अनुवाद का कार्य परिवार के पोषण के लिए अनिश्चित देख उसने गुरु से अपने व परिवार के लिए प्रार्थना करने के लिए आग्रह किया। रामकृष्ण ने उत्तर दिया—"वत्स ! यह मेरे लिए असम्भव है, तुम स्वंयम् अपने लिए प्रार्थना क्यों नहीं करते ?"

"लहर गंगा का एक अंश है, गंगा लहर का अंश नहीं है। समुद्र के मुकाबले में लहरों का जो स्थान है, ब्रह्म के मुकाबले अवतारों का वही स्थान है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

नरेन्द्र मां के मन्दिर में तीन दिन तक प्रार्थना हेतु आदेशानुसार गया, किन्तु ज्योंही वह मन्दिर में प्रवेश करने लगता, प्रार्थना करने का लक्ष्य आंखों से अनायास ओझल हो जाता। रामकृष्ण के पूछने पर वह नित्य ही कारण बता असमर्थता प्रकट कर देता।

अगले दिन वह पुनः जब मन्दिर पहुंचा प्रयोजन याद रहा, किन्तु लज्जावश मन ने धिक्कारा—'इतने छोटे-से स्वार्थ के लिए मां से प्रार्थना करना···?' तभी उसने विवेकपूर्ण शब्दों में मां से प्रार्थना की—"मां, मैं जानने और विश्वास करने के अतिरिक्त तुमसे कुछ नहीं चाहता।"

और एक दिन उसकी गम्भीर घोषणा को सारे संसार ने सुना—"मैं ऐसे परमात्मा में विश्वास करता हूं जो समस्त आत्माओं की समष्टि है, मैं समस्त देशों और जातियों के पापी भगवान् में, दरिद्र भगवान एवं पतित भगवान् में विश्वास करता हूं।"

मन में मात्र एक प्रबल इच्छा थी निर्विकल्प समाधि तक पहुंचने की

जिससे संसार में पुनः लौटने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

कलकत्ते के निकट कोसीपुर के एक उद्यान में शिवानन्द के सामने नरेन्द्र ने निर्विकल्प समाधि ही लगा ली। कुछ समय बाद शरीर जब शव के समान अचेतन और ठंडा प्रतीत हुआ तो शिवानन्द भयभीत हो राम-कृष्ण के निकट पहुंचे और स्थिति की जानकारी दी।

गुरु मन-ही-मन हर्षित हुए किन्तु उत्सुकता प्रकट किए बगैर मुस्कान-भरी मुद्रा में कहा—"अच्छा, बहुत अच्छा!" और गम्भीर हो गए। जब प्रसन्नचित्त नरेन्द्र गुरु के निकट पहुंचे तो उन्होंने कहा—"अच्छा है उच्च-तम उपलब्धि प्राप्त तो तूने कर ली, किन्तु अब से ये तालाचाबी के भीतर बंद रहेगी। मां का कार्य पहले तुम्हें पूरा करना है। कार्य जैसे ही समाप्त करोगे, मां खुद ताला खोल देगी।"

अधिकांश मनुष्यों में नहीं साधु-संतों में भी स्वर्गीय अतिथि अपने आपको आंशिक रूप में इस प्रकार प्रकट करता है जैसे कि फूलों के बीच में 'मधु' अपने आपको प्रकट करता है। तुम फूल को चूसकर मधु का स्वाद ले सकते हो—परन्तु अवतार में तो सब मधु ही मधु है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

नरेन्द्र ने व्याकुल हो उत्तर दिया—"गुरु जी! मैं समाधि में ही अत्यन्त सुखी था। उस असीम आनन्द ने बाह्य संसार को एकदम विस्मृत कर दिया था। मेरी इच्छा है आप मुझे इसी अवस्था में रहने दें।"

रामकृष्ण ने क्रोधित स्वर में कहा—'बड़े शर्म की बात है। तुम कैसे इन वस्तुओं को चाहते हो! मेरी धारणा थी तू एक विराट पात्र है जो समस्त जीवनों को अपने भीतर भर लेगा; परन्तु तू एक साधारण व्यक्ति के समान वैयक्तिक आनन्द में सुख भोगने का अभिलाषी है?

ध्यान रख—तू देखेगा मां के आशीर्वाद से तुझे प्राप्त यह उपलब्धि इतनी साधारण और स्वाभाविक हो जायेगी कि तू साधारण अवस्था में भी समस्त जीवों के बीच उसी एक भगवान् के दर्शन करेगा। तू संसार के महान् कार्य करेगा, मनुष्यों में आध्यात्मिक चेतना जगा देगा और दीन-दुखियों के कष्ट निवारण करेगा।"

नरेन्द्र के जीवन का लक्ष्य वे जानते थे इसीलिए उन्होंने उसे ऐसा

वरदान देकर मार्गदर्शन किया। वह ध्यान में अब भी समाधिस्थ था। उसके सामने अपने बचपन का वह दृश्य उभरने लगा—आंखों के सामने जब वह 4 वर्ष का था अपने हाथों उसने एक भिखारी को बिलकुल नए कपड़े भिक्षा में दान कर दिए। दर्शकों के भिखारियों को प्रताड़ित करने पर उसने लोगों से कहा—"जो कुछ मैंने दान दिया उसे ग्रहण करना उनका अधिकार है, आप इन्हें क्यों दुत्कार रहे हैं? दीन-दुखियों की सहायता करनी चाहिए।"

"अवतार सर्वथा एक व अद्वितीय हैं, वे विभिन्न नामों से, विभिन्न रूपों में और विभिन्न स्थानों पर आत्मप्रकाश करते रहते हैं। जैसे कृष्ण व ईसा इत्यादि।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

इस प्रवृत्ति के कारण मां-बाप ने उसे एक कमरे में बन्द कर दिया जिससे वह भिखारियों को उदारता से दान न करे। किन्तु उसे ज्योंही मौका मिलता खिड़की से वस्तुएं फेंककर ही वह शान्ति की सांस लेता। लगा उन भिखारियों की विकृत आकृतियां उसे आज आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठा रही हैं।

दूसरे दृश्य में वह शरारती बचपन के साथियों के समूह में खेलता मारपीट में प्रमुख भाग लेने के कारण मां के निकट एक अपराधी के समान करबद्ध खड़ा है। मां उठी और उसके सिर पर ठंडा पानी उंडेलती हुई ओ३म् शिवाय, ओ३म् शिवाय'' के जाप से उस असाधारण बालक बिले (प्यार का नाम) को शान्त कर रही है।

कुछ क्षण बाद एक और दृश्य सामने था—वह योगीमुद्रा में ध्यानस्थ है, तभी एक काला नाग आ जाता है। धीमे-धीमे वह शरीर पर चढ़ता है और रेंगते हुए साथी बालकों के सामने देखते-देखते वह आंखों से ओझल हो जाता है। भयभीत साथियों के पूछने पर वह अनभिज्ञता प्रकट कर रहा है कि उसे किसी विषैले नाग के शरीर पर चढ़ने व रेंगने की किसी स्थिति की जानकारी नहीं है। वह कतई विचलित नहीं, सामान्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

एक और दृश्य तभी उभरता है—गली के एकत्रित लोगों में हड़कम्प

मची है। उसने देखा एक महिला घोड़ागाड़ी में आसीन भयाक्रांत स्थिति में चीखती-चिल्लाती बदहवास दोनों हाथों से सहायता की पुकार करती हुई लुढ़कती है। आतंकित दर्शकों के कोहराम भरे स्वर को चीर युवा नरेन्द्र घोड़ागाड़ी पर बिजली की तरह झपट घोड़े पर उछलकर चाल रोक देता है।

नये दृश्य परिवर्तन में एक व्यायामशाला में जिमनास्टिक अभ्यास के दौरान झूला लगाते समय मित्रों के समूह में अपने करिश्मों के प्रदर्शन में व्यस्त है। अकस्मात् एक खम्बा भीड़ में खड़े एक अंग्रेज नाविक के सिर पर गिरा और वह लहूलुहान हो गया। अन्य साथी भयभीत हो किंकर्तव्य-विमूढ़ मुद्रा में एक-दूसरे को ताक रहे हैं। नरेन अपनी कमीज फाड़ घायल नाविक के सिर पर पट्टी बांध निकट बैठ पंखा झलने लगा और मित्रों से कुछ धन सहायतार्थ एकत्रित कर दान दे विदा कर देता है। अजनबी विदेशी दर्शक के नेत्र सजल हो अन्तरात्मा से कृतज्ञता प्रकट करता ओझल हो जाता है।

"देह ही केवल कष्ट पाता है। जब मन भगवान के साथ संयुक्त हो जाता है तो उसे कष्ट का अनुभव ही नहीं हो सकता। देह और उसकी यंत्रणा को परस्पर एक-दूसरे में व्यस्त रहने दो। मेरे मन तुम आनन्द में मग्न रहो।...अब मैं और मेरी मां चिर-काल के लिए एक हो गये हैं।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

ज्ञान-प्राप्ति का जिज्ञासु नरेन ईश्वर की खोज करते ब्रह्मसमाज के कर्णधार राजा राममोहन राय से भी मात्र अपने एक ही प्रश्न का उत्तर पाना चाहते हैं—"श्रीमन् ! क्या आपने ईश्वर को देखा है?" किन्तु देश के अन्य गण्यमान्य बुद्धिजीवियों, ईसाई पादरियों, मुल्ला-मौलवियों, विख्यात महात्माओं एवं साधु-संन्यासियों से ईश्वर के स्वरूप जैसे अपने ज्वलंत प्रश्न का सीधा सहज उत्तर प्राप्त नहीं कर सका।

उसके निश्चयात्मक प्रश्न का सटीक सहज उत्तर नरेन को प्रख्यात कवि रविन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे उच्च श्रेणी के विचारक के पास भी नहीं मिला जब उत्सुकतावश पूछा था उसने—"श्रीमन् ! क्या ईश्वर है? क्या आपने उसे देखा है?"

उन्होंने एक संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—"नहीं, मैंने ईश्वर को तो नहीं देखा है, पर तुम्हारे नेत्रों में मुझे एक योगी की-सी चमक दृष्टिगोचर होती है। मुझे विश्वास है तुम उसके दर्शन निश्चित ही कर सकोगे।"

और आज वह गुरुदीक्षा के समय निरुत्तर है, उसके मस्तिष्क में उमड़े बिचारों के समुद्र में भयंकर झंझावात है। जन्म से स्वतंत्र विचारक, निर्माण और शासन करने वाली प्रखर बुद्धि का स्वामी, आत्माओं को ध्यान समाधि (ट्रांस आनन्दमय आध्यात्मिक अनुभव) द्वारा वश में करने वाला साधक, एक घोर मूर्ति-विध्वंसक अचानक अद्भुत अतिप्राकृतिक रहस्यवाद की दलदल में खड़ा हो गया था।

"वह (भगवान) उन भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर, जोकि भगवान को प्यार करते हैं, बार-बार मानवीय शरीर का चोला धारण करते हैं। ठीक इसी तरह जैसे कि मैं आपके सम्मुख इस हिलते हुए पंखे को देख रहा हूं, उसी प्रकार मैंने परमात्मा को भी देखा···और मैं देखता हूं कि वह (परमात्मा) और उनकी अपनी सत्ता अभिन्न है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

तभी उसके सम्मुख गुरु के शब्दों ने चेतना का स्वर फूंका। खुले नेत्रों में एक ज्योति का प्रकाश उमड़ा जब उसने सुना—"नरेन, तुम महान् हो। साधारण आत्माएं संसार को शिक्षा देने के दायित्व से घबराती हैं। एक तिनका स्वयम् तो पानी में तैर सकता है किन्तु किसी पक्षी के ऊपर बैठ जाने से डूब जाता है। लेकिन एक महान् वृक्ष का तना गंगा के वक्ष पर मनुष्यों और पशुओं को अपने ऊपर लादकर किनारे तक पहुंचने में सक्षम होता है।"

उन्होंने आगे कहा—अर्जुन श्रीकृष्ण को जब परब्रह्म के रूप में देखने को इच्छुक थे तो वे उन्हें एक विशेष एकान्त स्थान पर ले जाकर पूछने लगे—"मुझे देखकर बताओ मैं कैसा लगता हूं ? क्या देख रहे हो···?"

अर्जुन ने कहा—"एक बड़े विशाल वृक्ष पर गोल-गोल फल लगे हैं।"

श्रीकृष्ण ने फिर कहा—"पास आकर देखो, अब क्या है ? यह फल नहीं हैं ये असंख्य श्रीकृष्ण हैं।"

रामकृष्ण बोले—"भगवान् के प्रतिपद दर्शनों के लिए केवल आंखें

और हृदय को उन्मुक्त रखने की आवश्यकता है।"

सोमवार 16 अगस्त 1886 को रामकृष्ण के महासमाधि लेने के पश्चात् नरेन्द्र ने सर्वप्रथम शारदा मां के सहयोग से शिष्य समुदाय को एक सूत्र में संगठित किया और तीन वर्षों तक देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करते हुए जनता से सम्पर्क स्थापित कर अपने जीवन को निश्चित लक्ष्य के सन्दर्भ में प्रत्यक्ष अनुभव के लिए दीन-दुखियों और राजकुमारों से समान रूप से मिले। विद्वानों और अनपढ़ों को अपने विचारों से अवगत कराया।

इन चमत्कारिक यात्राओं के अभियान में उनका परिचय खेतड़ी के महाराजा अजीतसिंह से हुआ जिन्होंने स्वामी जी में विशेष आस्था और अपार अनुराग का प्रदर्शन कर उन्हें स्वामी विवेकानन्द नाम दिया। यह एक ऐसा उपयुक्त नाम था जो भारत में ही नहीं शीघ्र ही विश्वविख्यात हो गया।

"तुम जैसी चाहो उनकी प्रार्थना करो। वे तुम्हें अवश्य सुनेंगे, क्योंकि वे चींटी के पैरों की आवाज भी सुन लेते हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

वे एक दिन राजा खेतड़ी के विशेष आग्रह पर शिकार पर चले गये; किन्तु एक वृक्ष के नीचे जब वे ध्यानमग्न मुद्रा में बैठे थे अचानक एक भयानक विशालकाय चीता उनके इर्द-गिर्द मंडराने लगा। तभी खेतड़ी महाराज ने दौड़कर एक बन्दूक उन्हें आत्मरक्षार्थ दी जिससे नरभक्षी चीते से प्राणरक्षा हो सके। स्वामी जी ने निडरता से अजीतसिंह का प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया—"साधुओं को आत्मरक्षा के लिए बन्दूक की आवश्यकता नहीं। ईश्वर की दृष्टि में कोई प्राणी मुझसे भयभीत नहीं तो चीता ही क्यों हानि पहुंचायेगा ?" राजा चकित हो वह दृश्य देखते रहे जब वह नरभक्षी थोड़ी देर बाद स्वयम् उनकी आंखों से ओझल हो गया।

अलवर रियासत के युवा नरेश यूरोपीय विचारों से प्रभावित होने के कारण मूर्तिपूजा-विरोधी थे। उन्होंने स्वामी जी का अपने निवास पर राजकीय सम्मान से श्रद्धावश स्वागत किया। वार्तालाप के दौरान उन्होंने व्यंग्यपूर्ण वाणी में स्वामी जी से प्रश्न किया—"मूर्तिपूजा मन्दिरों में क्यों की जाती है ?"

स्वामी जी ने उत्तर दिया—"ईश्वर की मूर्तिरूप में पूजा करना भी उनकी प्राप्ति का एक मार्ग है और इससे कोई हानि भी नहीं।"

महाराजा ने अपने विनोदी नेत्र कुछ इस प्रकार उनके चेहरे पर घुमाये जिससे आभास होता था कि उत्तर से वे सन्तुष्ट नहीं। स्वामी जी ने निकट खड़े मन्त्री से महाराजा का दीवार पर टंगा चित्र मांगा। सम्बन्धित चित्र जब मन्त्री ने उतार उनके हाथों में सौंपा, स्वामी जी ने उसे निर्देश दिया कि वह महाराजा के चित्र पर थूके। प्रस्ताव सुन मंत्री हतप्रभ हो बोला—"यह दुष्कर्म मैं कैसे कर सकता हूं, क्षमा कीजिए!"

मुड़कर उन्होंने महाराजा से कहा—"चित्र निर्जीव है पर मंत्री इस पर थूकने का साहस नहीं करता केवल इसलिए कि वह राजा का प्रतीक है। ठीक इसी प्रकार मूर्तिपूजा भी ईश्वर की प्रतीकात्मक एक कार्यशैली है जिसमें लोग ईश्वर में ध्यान केन्द्रित कर उच्च आध्यात्मिक स्तरों पर पहुंचने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं।" महाराजा तर्कसंगत उत्तर सुन स्वामी जी के भक्त हो गए।

"विवेक और वैराग्य के बिना ज्ञान शास्त्र व्यर्थ है। सिद्धियां परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बड़ी बाधा हैं।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

दिसम्बर 1892 के अंत में भ्रमण करते हुए स्वामी जी कन्याकुमारी पहुंचे और वहां की सुप्रसिद्ध देवी कन्याकुमारी के मन्दिर में देवी के सम्मुख दण्डवत् किया। समुद्र में काफी आगे उभरी हुई उस पवित्र चट्टान तक पहुंचना चाहते थे जिस पर पार्वती जी ने खड़े होकर तप किया था। नाविक को देने के लिए धन न होने के कारण वह निडर संन्यासी शार्क मछलियों से भरे अथाह तूफानी समुद्र की भयानक लहरों को रौंदता उस पावन चट्टान पर पहुंचकर तीन दिन और तीन रात भारत की समस्याओं के समाधान के लिए निरन्तर ध्यानमग्न रहे। उसी चट्टान पर उन्होंने अमेरिका जाने का निर्णय लिया। पेनिसुला नामक जलयान से समुद्री यात्रा ब्रिटिश कोलम्बिया में वेनकोवर तक करने के पश्चात् 18 जुलाई 1893 को शिकागो पहुंचे। पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक सत्यों की स्वामी जी से जब व्याख्यायें सुनीं तो सभी मंत्रमुग्ध हो गए। वे इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी

जहां भी गए, लोगों ने अपनी आंखों पर बिठाकर सत्कार किया, जहां उन्होंने विश्व-बन्धुत्व का प्रकाश फैलाया। सर्वधर्म सम्मेलन में 27 सितम्बर '93 को वहां के असंख्यों श्रोताओं को चकित कर दिया।

श्री रामकृष्ण के शक्तिशाली महान् प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु की वाणी के प्रचारार्थ बड़े आदर सहित उनकी आध्यात्मिक शक्तियों का गुणगान करते हुए स्वीकार किया—"मुझे एक ऐसे महान् विचारक एवं महापुरुष के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनका जीवन उनकी समस्त शिक्षाओं और उपदेशों की अपेक्षा उपनिषदों की वाणी की जीवन्त व्याख्या है...मानवरूप में उपनिषदों की जीवित आत्मा है...। शंकर के पास महान् मस्तिष्क था तो चैतन्य के पास एक विशाल हृदय। इन्हीं दोनों के एक समन्वित मूर्तरूप थे मेरे गुरु रामकृष्ण जो प्रत्येक सम्प्रदाय में एक ही आत्मा, एक ही परमात्मा को कार्य करते हुए देखते थे। उन्होंने भारतवर्ष ही नहीं उसके बाहर भी प्रत्येक वस्तु में भगवान् को देखा। समस्त संसार के दीन-दुखियों, दुर्बलों, असहायों, पीड़ितों और पददलितों के कल्याण के लिए उनका हृदय आर्तनाद कर उठता। उनकी विशाल तीव्र बुद्धि परस्पर विभिन्न विरोधी सम्प्रदायों के बीच भी एक ही संगीत-लहरी की कल्पना में जुटी थी जो आजीवन मस्तिष्क और हृदय के एक सार्वभौम धर्म की प्रेरणा लेकर अपने कर्मक्षेत्र में संघर्ष करते रहे।

"मेरी मुक्ति कब होगी?—जब यह 'मैं-पन' दूर हो जायेगा। 'मैं और मेरा' अहंकार है। 'तू और तेरा' ज्ञान है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

यह कार्यक्षेत्र एक ऐसी प्रसिद्ध नगरी थी जो पश्चिमी विचारों से पूर्ण थी और यूरोपीय विचारों से अधिक प्रभावित हो पागल हो उठी थी। ऐसे स्थान में बिना किसी किताबी विद्या के अर्जित ज्ञान के जिसे अपना नाम तक लिखना न आता—वही हमारे विश्वविद्यालयों के बड़े-बड़े प्रतिभाशाली स्नातक उसकी विलक्षण शक्ति और प्रतिभा के सामने नतमस्तक थे। वे अपने समय के महान् ऋषि थे, जिसकी शिक्षायें वर्तमान युग के लिए अधिक उपयोगी और लाभदायक हैं। यदि मैं आपसे एक भी

सत्य बात कहता हूं तो वह उसकी व केवल उसकी है और यदि मैंने आपसे कोई भ्रांतिपूर्ण या गलत बातें कही हैं तो वे सब मेरी अपनी हैं, उनका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मनुष्य-निर्माण, चरित्र-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण का उन्होंने अलख जगाया।

पन्द्रह

लीला संवरण एवं महासमाधि

"मां, तुम इन सब मनुष्यों को यहां क्यों लाती हो ? ये तो अपने से पांच गुना पानी मिले दूध के समान हैं। मेरी आंखें इनका पानी सुखाने के लिए आग में फूंक मारते-मारते नष्ट हो गई हैं। मेरा स्वास्थ्य खत्म हो गया है। अब मेरी ताकत के बाहर है। यदि तुम यह कहना चाहती हो, तो अपने आप करो। (अपने शरीर की ओर निर्देश करते हुए) यह तो फूटा ढोल है, यदि तुम इसे दिन-रात बजाये जाओगी तो यह कितने दिन तक ठहर सकता है ?"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

हजारों निष्ठावान भक्तों की श्रद्धा ने अपनी आस्था और अप्रतिम भक्ति तथा आत्मसमर्पण द्वारा उनके सारगर्भित उपदेशों को जीवन में आत्मसात् कर लिया।

निर्जन और शान्त दक्षिणेश्वर अब ऐसे प्रबुद्ध प्रेमी जिज्ञासुओं का आवास बन चुका था जहां उनके आध्यात्मिक मार्गदर्शन पाने के लिए उनके छोटे-से कमरे में नित्यप्रति श्रद्धालुओं की अपार भीड़ सवेरे से शाम तक उन्हें घेरे रहती। समय पर भोजन करने तथा अपनी श्रान्त-क्लान्त देह को आवश्यक आराम पहुंचाने की सुध-बुध भी उन्होंने त्याग दी थी।

सारा वातावरण अवर्णनीय भावपूर्ण भजनों एवं उद्‌बोधक उपदेशों की सुमधुर संगीत-लहरी से आध्यात्मिकता की बाढ़ में डूबकर गुंजायमान

दृष्टिगोचर होता। जो भी उनके दर्शनार्थी दक्षिणेश्वर में ईश्वर-दर्शन के लिए आते, आकुल मुद्रा में आत्मविभोर हो एक प्रकार का विशेष आकर्षण और पागलपन-सा अनुभव करने लगते जैसे फूलों के खिलने पर भौंरों का समूह स्वयम् मधुपान करने के लिए उनके इर्द-गिर्द मंडराने लगता है।

ये शिष्य एवं भक्तगण उन्हें पिता तुल्य चाहते। प्रातः और सायंकाल सुमधुर कलकल बहती गंगा की लहरें उत्तर दिशा की ओर से संगीतमय लोरियों से दोनों कूलों को आप्लावित करतीं तभी वातावरण में देवी-देवताओं को आकर्षित करते घंटे और शंखध्वनियों का स्वर आकाश में तैरता हुआ मन्दिर में आरती गान के साथ लय-ताल मिलाता वायुमंडल की नीरवता को भंग कर देता।

उनकी वाणी में सरलता, मधुरता और आत्मीयता का संगम था। दृष्टि इतनी पैनी और पारदर्शी जिसके आगे कोई वस्तु, व्यक्ति एवं दृश्य अलक्षित रह ही नहीं पाता था। वे पारस के समान निश्छल प्रेम के स्वामी थे जिसके छूने मात्र से पापी आत्माएं खरे सोने के रूप में परिवर्तित होने में सक्षम थीं।

"आत्मा का पार्थिव बन्धन अज्ञान के कारण है। अज्ञान व भ्रान्ति से मुक्ति तथा परमात्मा की स्वतंत्रता की प्राप्ति का नाम ही मोक्ष है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

उनकी धारणा थी—"बन्धन मन का है वैसे ही स्वतंत्रता भी मन की है। पाप-बोध आध्यात्मिक उन्नति की पहली किन्तु सबसे निचली सीढ़ी है। जहां लज्जा, घृणा और भय होता है—वहां भगवान के दर्शन पाना दुर्लभ है।"

अपने प्रवचनों में उन्होंने तीर्थयात्रा की उपादेयता पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—"मनुष्य की पवित्रता से ही स्थानों की पवित्रता होती है अन्यथा कोई स्थान मनुष्य को पवित्र किस प्रकार बना सकता है?"

"भगवान सर्वत्र विद्यमान है और वही हमारे अन्दर भी मौजूद है। यह सारा विश्व और जीवन उसी की एक कल्पना और स्वप्न है।"

एक दिन संत समागम में उन्होंने एक नीतिगल्प श्रोताओं को सुनाकर मन्त्रमुग्ध कर दिया—"एक लकड़हारा एक पेड़ के नीचे विश्राम की

मुद्रा में जब स्वप्न देख रहा था, एक अन्तरंग मित्र ने उसे सोते से जगा दिया। लकड़हारे ने मित्र से पूछा—'ओह ! तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? मैं एक राजा था। मेरे सात बच्चे थे जो वीरता में बड़े पराक्रमी और बलशाली ही नहीं पांडित्य से भी परिपूर्ण थे। मैं राजसिंहासन पर बैठा राज्य करता था। कितने सुखद संसार का मैं स्वामी था ! तुमने व्यर्थ ही मेरे स्वप्निल संसार को धूल-धूसरित कर दिया !'

मित्र ने उत्तर दिया—'मैंने क्या बुरा किया ? यह तो केवल सपना ही तो था।'

"जहां लज्जा, घृणा और भय है वहां भगवान कभी प्रगट नहीं होते।"
—श्री रामकृष्ण परमहंस

लकड़हारे ने उत्तर दिया—'तुम बिल्कुल नहीं समझते, स्वप्नों में राजा होना भी उतना ही सत्य है जितना कि मेरा लकड़हारा होना। यदि लकड़हारा होना सत्य है तो राजा होना भी सत्य है।' " श्रोता शिष्य-मंडली बड़ी उत्सुकता से ध्यानमग्न विचारों को ग्रहण करती न अघाती।

श्री रामकृष्ण अपने भक्तों और साधुओं के सिरमौर थे किन्तु अपनी पत्नी के उत्तरदायित्व से कभी भी विमुख नहीं हुए। एक दिन शारदा मां गंगाजी के पश्चिमी घाट के निकट नीलाम्बर मुखर्जी के यहां रुकीं तो उन्हें एक अलौकिक अनुभूति हुई।

उन्होंने देखा दि गंगाजी में ठाकुर जी (रामकृष्ण) चलते चले जा रहे हैं। चलते-चलते उनका शरीर गलने लगा और धीमे-धीमे वह गल कर गंगाजल में मिल गया। वे ओझल हो गए और एक बलवाल हृष्ट-पुष्ट स्वामी जी प्रकट होते हैं और वे उस पवित्र गंगाजल को असंख्य लोगों की खड़ी भीड़ पर छिड़कने लगे हैं।

ठाकुर ने सुना किन्तु मुस्कराकर मौन हो गये जैसे कुछ भी नहीं सुना है उन्होंने।

ठीक इसी प्रकार एक दिन ठाकुर ने शारदामणि की मां श्री श्यामा-सुन्दरी देवी की चिन्ता का निवारण पहले मौन रहकर किया। श्री मां की जननी चिन्तित थीं कि उनकी पुत्री एक असंसारी अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्ति की पत्नी होने के कारण अपने बच्चों से 'मां' का सम्बोधन स्वर सुनने से

आजीवन वंचित रह जायेगी।

शंकालु श्यामा को निरुत्तर करते हुए रामकृष्ण ने केवल दृढ़ता से उत्तर दिया—"सासुजी ! आप इनकी चिन्ता तनिक न कीजिए। आपकी पुत्री की इतनी सन्तानें होंगी, कि वह 'मां' की पुकार सुनते-सुनते ऊबने लगेंगी।" एक दिन एक भक्त ने उनसे स्पष्टतया कह दिया—"मेरे समान आपके न मालूम कितने पुत्र हैं, किन्तु आपके समान मेरी एक भी माता नहीं है।"

"वह अभागा पुरुष जो बराबर यह कहता रहता है कि 'मैं पापी हूं'—वह वास्तव में हो पापी हो जाता है। इसी प्रकार वह मूर्ख आदमी जो निरन्तर यह कहता है कि 'मैं एक गुलाम हूं'—वह अन्त में वास्तव में ही गुलाम हो जायेगा।"

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

श्री मां प्रात: नित्यप्रति 3-4 बजे के बीच अवश्य उठ जातीं और नित्य-क्रिया से निवृत्ति के पश्चात् नियम से गंगा में स्नान के लिए जातीं। एक दिन प्रात:काल जब वे गंगा-स्नान करने जा रही थीं तो अकस्मात् एक सीढ़ी पर लेटे हुए एक घड़ियाल से ठोकर लगी। वह सरकता हुआ पहले सीढ़ियों से नीचे उतरा और फिर भागकर गंगा की तरंगों में उतरकर लोप हो गया।

उन्होंने निडरता से गंगा में प्रवेश कर यथास्थान अंधेरे में ही स्नान किया और उसके पावन जल में चन्द्रमा के रुपहले प्रतिबिम्ब को एक टक निहारती हुई प्रार्थना करने लगीं—"परमात्मा ! चन्द्रमा में भी काले धब्बे हैं, हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर, मुझे बिल्कुल निष्कलंक कर दो। मुझे ऐसा पवित्र और धवल बनाओ जैसा की चन्द्रमा का शीतल प्रकाश है।"

श्री मां दक्षिणेश्वर में लगभग तेरह वर्षों तक रहीं। प्रारम्भ में वह जिस कोठरी में रहतीं उसकी लम्बाई नौ फुट और वह केवल सात फुट चौड़ी थी। उस नहबत की कोठरी का दरवाजा इतना नीचा था जिसमें प्रवेश करने व बाहर आते समय बहुत झुक कर निकलने की आदत बनाने के लिए कई बार सर से चौखट टकराने के पश्चात् वे अभ्यस्त हुईं। जब वह अस्वस्थ होतीं तो ठाकुर व्याकुल हो उठते। यही रामकुठरिया उनकी

सब कुछ थी—उनका शयनकक्ष, रसोई घर, भंडार गृह जिसके सिकहरे भी सदा सामान से लदे रहते। चिन्तातुर ठाकुर कहते—"स्वच्छन्द विचरने वाला पक्षी पिंजड़े में बन्द रहे तो उसका स्वास्थ्य तो स्वभावत: क्षीण हो ही जायेगा।" श्री मां मुस्कराने लगतीं।

"सूर्य संसार को प्रकाशित करता है, पर बादल का एक छोटा-सा टुकड़ा उसे हमारी नजर से ओझल कर देता है। उसी प्रकार माया का तुच्छ-सा आवरण हमें सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी सच्चिदानन्द को देखने नहीं देता।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

प्रारम्भ में श्री मां को मात्र तीन व्यक्तियों का भोजन पकाना पड़ता—अपनी सास, ठाकुर और अपना; किन्तु रामकृष्ण के शिष्यों की संख्या बढ़ने पर कभी-कभी चालीस-पचास अतिथियों तक की विभिन्न रुचियों के अनुकूल भोजन भी उन्हें इसी छोटी-सी कोठरी में ही पकाने की व्यवस्था करनी पड़ती। कठिन परिस्थितियों से जूझने की वे अभ्यस्त हो चुकी थीं, इसलिए एकरस रहतीं। न कभी घबरातीं और न वे झल्लाकर क्रोधित होतीं। वे मातृत्व की मूर्तिमान् स्वरूप सर्वभाव से माता थीं।

श्री मां ठाकुर जी की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए विशेष तौर पर सजग और सतर्क रहतीं और उनकी तमाम आवश्यकताओं को अत्यन्त ही सावधानी और सतर्कतापूर्वक पूरा करने में तल्लीन रहती थीं। उनके ठाकुर बालक के समान सरल थे इसलिए उनको भोजन कराने के लिए मनाना और फुसलाना पड़ता। थाली में चावलों को इस भांति दबाकर परोसतीं जो थोड़ा-सा दिखे क्योंकि अधिक भात देख भोजन न करते।

किन्तु अनवरत भावसमाधि के तनाव तथा अनगणित भक्तों से आये दिन निरन्तर आध्यात्मिक चर्चाओं के फलस्वरूप उनका शरीर दुर्बल और क्षीणकाय होने के कारण स्वास्थ्य टूटने लग गया।

उनके निकट लोगों का समूह समय-असमय जब भी पहुंचे, वे शारीरिक अस्वस्थता की क्षणिक परवाह किए बगैर दुख और अज्ञान से भरी मानव-जाति के कल्याण के लिए करुण स्वर से चीत्कार कर उठते—"बार-बार कुत्ते का जन्म लेकर भी यदि मैं एक आत्मा की सहायता और मानव-जाति के कल्याण के लिए कुछ कर पाऊं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं,

मैं सहर्ष तैयार हूं। एक मनुष्य की सहायता करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। एक दुखी व्यक्ति के कल्याण, उत्थान के लिए मैं ऐसे बीस हजार शरीरों का सहर्ष त्याग करने को तैयार हूं।"

"यदि तुम पूरी आन्तरिकता के साथ अच्छे और पवित्र होने की कोशिश करोगे, तो ईश्वर तुम्हारे पास सद्गुरु भेज देंगे। आवश्यकता है मात्र आन्तरिकता की।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

अचानक जून 1885 के उमस भरे दिनों में भीषण गर्मी के कारण बर्फ के अधिक सेवन से कष्ट तो कम हुआ किन्तु अचानक उनके गले में भयंकर पीड़ा भी अनुभव हुई। प्रवचनों का क्रम निरन्तर चलता ही रहा। किन्तु एक माह के बाद रोग बढ़ने पर कंठरोग विशेषज्ञों की सलाह लेने पर ज्ञात हुआ उन्हें गले का कैन्सर (कर्कट रोग) CLERGYMAN'S SORE THROAT (जो बहुधा धर्म-प्रचारकों के रात-दिन लोगों से बोलते रहने के कारण भी) हो गया है।

उनकी सेवाशुश्रूषा और औषधि की पूरी व्यवस्था अच्छे चिकित्सकों के माध्यम से भक्तों ने कराई किन्तु रोग बढ़ता ही चला गया। अक्तूबर मास में उन्हें श्यामपुकुर के मकान में रखने की कुछ दिन चेष्टा की गई किन्तु स्थास्थ्य में आशातीत सुधार दृष्टिगोचर न होने पर दिसम्बर, 1885 में काशीपुर के बगीचे में रखने की व्यवस्था की गई।

उस समय विज्ञान संवर्धन संस्था के संस्थापक डा० महेन्द्रलाल सरकार की देख-रेख में उनकी चिकित्सा प्रारम्भ की गई। वे उनके समस्त आदेशों का पालन करते, औषधि खाते, किन्तु भावसमाधि से न तो विमुख रहे और न स्वरयन्त्र को विश्राम दिया। कारण—अपने पास शान्ति की कामना से आए संसार के ताप-तप्त लोगों के सम्मुख अपनी वाणी को मौन नहीं रख पाते थे। वार्तालाप करते-करते उनका रोग इतना बढ़ गया कि गले से बड़ी मात्रा में रक्त का स्राव हुआ और अब उनके लिए भोजन ग्रहण कर पाना भी असम्भव होने लगा। डाक्टर सरकार उनके धार्मिक विचारों से सहमत न थे। परन्तु अपने रोगी के बढ़ते रोग के कारण उनकी श्रद्धा दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और दिन में तीन बार उन्हें देखने आने

लगे। डाक्टर सरकार को जब वे प्रवचन सुनाने लगते तो वे कहते—"आपकी ऐकान्तिक सत्यनिष्ठा से प्रभावित हो आपसे इतना प्रेम करता हूं। आप जिस वस्तु को सत्य समझकर विश्वास से कतई विच्युत नहीं होते···यह मत समझिए मैं आपकी खुशामद करता हूं। यदि मेरे पिता गलत मार्ग पर हों तो उनकी आलोचना तत्काल करूंगा। यह कहना कि निराकार भगवान ने मनुष्य के रूप में अवतार धारण किया है, समस्त धर्मों का ही विनाश है।"

"लहर गंगा का एक अंश मात्र है, गंगा लहर का अंश नहीं है। समुद्र के मुकाबले में लहरों का जो स्थान है, ब्रह्म के मुकाबले अवतारों का वही स्थान है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

इस संदर्भ में नरेन ने अपने युक्तिवादी अभिमत प्रकट करते हुए कहा—"गुरु का शरीर भी अन्य मनुष्यों के शरीर के समान प्रकृति के नियमों के अधीन है। समस्त प्राणियों के मध्य भगवान ही अपनी ज्योति विकीर्ण कर रहे हैं।"

कालीपूजा के दिन रामकृष्ण के अपने भक्तों व चिकित्सक को पूर्व सूचना दिये बगैर सारा दिन समाधि में बिताने पर सभी को आश्चर्य अनुभव हुआ कि जगन्माता ही उनमें वास कर रही हैं।

उनके चिन्तातुर अन्तरंग शिष्य नरेन्द्र, निरंजन, राखाल, योगीन, लाटू काला, शशि, शरत और दोनों गोपाल आदि निरन्तर सेवारत हो गए। एक पंडित भक्त ने रामकृष्ण से प्रार्थना की—"गुरुवर ! धर्मशास्त्र के अनुसार आप जैसे महापुरुष अपनी इच्छाशक्ति से ही अपने आपको रोगमुक्त करने में सक्षम हैं फिर इस काया को कष्ट···?"

उन्होंने अपना मौन तोड़ते हुए उत्तर दिया—"मैंने जब अपना सर्वस्व त्याग मन को चिरकाल के लिए भगवान को समर्पित कर दिया है, क्या उसे पुनः अपने लिए उनसे वापिस मांगना उचित लगता है ? मैं जान-बूझकर यह कष्ट नहीं भोग रहा ?"

"यदि गड्ढा, तालाब आदि में पानी बहता नहीं है, तो उसमें काई आदि पैदा हो जाती है। उसी प्रकार जहां आध्यात्मिक जगत में सत्य के एक अंश को ही मनुष्य पूर्ण सत्य मान बैठता

है, वहीं नए पंथ की उत्पत्ति होती है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

"अपने लिए नहीं तो क्या हमारे लिए आप मां से प्रार्थना नहीं कर सकते ?" एक शिष्य ने आग्रह किया।

वे बोले—"मैंने उनसे कहा था कि वे मुझे ऐसी शक्ति दें जिससे कुछ भोजन ग्रहण कर सकूं, क्योंकि रोग के कारण कुछ भी खाने में असमर्थ हूं। उन्होंने निर्देश दिया आप सब भक्तों को संकेत करते हुए कि क्या तुम इन सब मुखों से भी खाने में असमर्थ हो? मैं आगे लज्जावश कुछ भी कह नहीं पाया।"

व्याकुल शिष्यों ने जिज्ञासा भरे स्वर से पूछा—"हमारे लिए क्या आदेश है ?"

"मुझे तो संसार के समस्त पदार्थ ही भगवतमय दृष्टिगोचर होने लगे हैं। लोगों को आदेश देने और सिखाने योग्य मेरे पास कुछ और शेष नहीं रह गया। मेरी शिक्षा समाप्त हो चुकी है।" कुछ क्षण मौन होकर पुनः कहने लगे—"आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता के विरुद्ध कोई भी प्रयास अभिशाप है। अपने विचारों को कभी दूसरों पर आरोपित नहीं करना चाहिए। देह ही कष्ट पाती है, जब मन भगवान के साथ संयुक्त हो जाय तो उसे कष्ट अनुभव ही नहीं हो पाता। अब मैं और मेरी मां चिरकाल के लिए एक हो गये हैं।"

"पैसे से अनेक प्रकार के सांसारिक सुख प्राप्त किए जा सकते हैं। गाड़ी, घोड़े, नौकर-चाकर, दास-दासी, कपड़े-लत्ते, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ और प्रत्येक प्रकार के ऐशोआराम के मनोवांछित सामान जिस पैसे से प्राप्त किए जाते हैं उसी पैसे के कारण संसार के आधे से अधिक झगड़े भी होते हैं। इसके प्रति आकर्षण चिन्ता की जननी है।" —श्री रामकृष्ण परमहंस

दोपहर हो गया। डाक्टर नवीन पाल आकर उनके शरीर का परीक्षण करने लगे तो रामकृष्ण ने कहा—"आज मुझे पीड़ा के कारण बड़ा क्लेश है। कमर के पास पीठ का भाग मानों जल रहा है।" कहते-कहते उन्होंने नाड़ी दिखाने के लिए अपना बायां हाथ आगे बढ़ाया। नाड़ी-परीक्षण

करते समय डाक्टर रामकृष्ण को एकटक निहारते रहे।

रामकृष्ण ने उनकी शान्त मुद्रा को भंग करते हुए प्रश्न किया—"क्या कोई उपाय है ?" निरुत्तर डाक्टर के शंकालु नेत्रों में झांकते हुए उन्होंने फिर कहा—"अब कोई उपाय नहीं, रोग असाध्य हो गया है, बस इतनी सी बात है न !··· कुछ तो बोलिए ?"

डाक्टर नवीन पाल चिन्तित स्वर में बोले—"लक्षण ऐसे ही दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। फिर भी औषधि से थोड़ी पीड़ा अवश्य कम होगी।" वे थोड़ी सान्त्वना दे कमरे से बाहर चले गये। शिष्यों ने घेर लिया उन्हें।

उन्होंने तरुण भक्तों को निकट बिठाते हुए नरेन से कहा—"मैं तेरी देख-रेख में इन सभी को छोड़ जाना चाहता हूं। देखना ये लोग आध्यात्मिक साधना में लगे रहें और घर न वापिस लौटें।"

दूसरे दिन प्रातःकाल बूढ़े गोपाल ने साधुओं को गेरुआ वस्त्र और रुद्राक्ष की माला दान करने की इच्छा प्रकट की। रामकृष्ण ने अपने तरुण शिष्यों की ओर संकेत कर उनसे कहा—"इनसे बढ़ कर अच्छे साधु तुम्हें अन्यत्र कहां मिलेंगे ? तुम्हें जो भी दान करना है इन्हें सहर्ष दे दो।" गेरुए वस्त्रों का गट्ठर रामकृष्ण के निकट खोलने पर उन्होंने स्वयम् उन तरुण शिष्यों में बांट दिया।

"घर की छत मनुष्य को दिखलाई देती है, परन्तु उस तक पहुंचना आसान नहीं होता। किन्तु जो भी छत पर पहुंच जाता है उसे नीचे रस्सा लटका कर दूसरे व्यक्तियों को भी अपने निकट ऊपर खींचने में आसानी होती है। वह सक्षम होता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

सायंकाल एक अनुष्ठान करा और निर्देश दिया कि बिना जाति-पांति के विचार किये सभी घरों से वे भिक्षा प्राप्त करें और संसार भ्रमण करते हुए मानवता को धर्म का महान कल्याणकारी पाठ पढ़ाने के लिए अग्रसर हों। अपने गुरु के अस्थिपंजर शरीर को देख भक्तगण चिन्ता में डूब व्यथित हृदय से मन ही मन रो रहे थे। उन्हें आभास हो गया था कि जीवन का अन्त सन्निकट है और इसीलिए असहनीय पीड़ा को मुस्कराहट भरे स्वर में डुबाकर वे गाने लगते—"दुख जाने,···आर शरीर जाने,···

मन तुमि अनन्दे थेको···।"

—'अरे मेरे मन ! शरीर और उसके कष्ट को आपस में एक-दूसरे को निबटने दे किन्तु तू तो आनन्द में रह।'

उसी दिन उन्होंने नरेन को अपने इष्ट मंत्र 'राम-मन्त्र' में दीक्षित किया। इस राम-मंत्र का नरेन पर तत्काल ऐसा चमत्कारिक प्रभाव हुआ कि वे अपूर्व आनन्द से भावविह्वल हो 'राम'-'राम' का जाप करते हुए घर के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। ऐसी उन्मत्त अवस्था में वे कई घंटों रहे। किसी शिष्य को भय के कारण उनके निकट आने का साहस न हो सका।

महासमाधि से आठ दिन पूर्व श्री योगीन मां से बंगला पंचांग मंगवाकर 25 श्रावण (9 अगस्त) से आगे के दिन श्री रामकृष्ण ने पढ़ने को कहा था। योगीन पढ़ते हुए श्रावण माह के अन्तिम तक पहुंचे तो उन्होंने आगे पढ़ने से रोकते हुए कहा—"बस आगे नहीं सुनना चाहता।"

"पैसे प्राप्त करने के लिए कष्ट उठाना पड़ता है और इसकी रक्षा के लिए श्रम करना पड़ता है। इसका नाश होने पर दुख होता है और पैसे प्राप्त हो जाने पर अभिमान और अहंकार जन्मता है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

मृत्यु से चार दिन पूर्व उन्होंने एकान्त में रहने की इच्छा प्रकट कर नरेन को अपने समीप रहने का निर्देश दिया। निकट बैठने के पश्चात् नरेन को निर्निमेष नेत्रों से देखते-देखते ध्यानमग्न मुद्रा में समाधिस्थ हो गयें। नरेन ने अपने शरीर में विद्युत सरीखें वेग के साथ सूक्ष्म शक्ति को अपने अन्तराल में प्रविष्ट होते हुए अनुभव किया और वे बाह्य चेतना धीमे-धीमे खो बैठे।

काफी समय के उपरान्त जब नरेन को सामान्य चेतना का बोध हुआ, उन्होंने अपने सम्मुख रामकृष्ण को अश्रुपूरित नयनों से एक टक निहारते हुए पाया।

रामकृष्ण ने व्याकुल दृष्टि से नरेन से कहा—"आज मैं अपना सभी कुछ देकर अब एक सर्वस्वहीन गरीब फकीर मात्र रह गया हूं। प्राप्त शक्ति से तुम संसार का महान् कल्याण करने में सक्षम हो। जब तक तुम

वह संपादन न कर पाओ तब तक तुम न लौटोगे।"

इस प्रकार रामकृष्ण की समस्त शक्तियां नरेन्द्र के अन्दर संचारित हो गईं और अब गुरु तथा शिष्य परस्पर एक-दूसरे की अभिन्न आत्मा के रूप में एकाकार हो गये थे।

नरेन के मन में आया, काश इस भयावह शारीरिक यंत्रणा के दौरान अपने अवतारत्व की घोषणा भी करते तो विश्वास हो जाता कि वे अवतार हैं !

आश्चर्य है इन विचारों के नरेन के मन में उदय होते ही रामकृष्ण अपने जर्जर शरीर की क्षीण शक्तियों को तत्काल संचित कर स्पष्ट शब्दो में बोल उठे—"जो राम था, जो कृष्ण था, वही इस शरीर में रामकृष्ण हुआ है—किन्तु तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।"

"पैसे से परोपकार तो हो सकता है पर पैसे के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति नहीं की जा सकती। अरे मन ! जिस वस्तु से ईश्वर-लाभ होना तो दूर ईश्वरभक्ति के मार्ग में विघ्न उत्पन्न होता हो ऐसी वस्तु को रखने से लाभ क्या है ? पैसे का मूल्य मिट्टी के मूल्य के समान है अतः जीवन में इसका त्याग ही श्रेयकर है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

इस रहस्योद्घाटन के पश्चात् नरेन मन ही मन रामकृष्ण के प्रति अपनी शंकालु दृष्टि पर लज्जित हो अनुताप से तभी गड़ गये। उनका प्रवचन मुस्कान भरे पीड़ित स्वर से भी गुंजायमान रहा।

ईश्वरीय अवतार को समझना आसान नहीं है। जिस प्रकार ईसा का नाम हमें एक और नैतिक दिशा का स्मरण कराता है, जो कि हमेशा अवतार का एक अंश है। 'फूल', 'मधु' और 'आनन्द' इन शब्दों से कदापि विभ्रान्त होने की आवश्यकता नहीं है। भगवान जब भी अवतार ग्रहण करते हैं आत्मबलिदान का तत्त्व उनमें अवश्य ही विद्यमान रहता है।" क्षत-पीड़ित कण्ठ से इतवार 15 अगस्त 1886 के सारे दिन अपने भक्तों के बीच लगभग 2 घण्टे निरन्तर वार्त्तालाप ही करते रहे। दोपहर बीत चला किन्तु गले में असहनीय जलन को शान्त मुद्रा में मुस्कराते हुए सहन करते रहे जैसे उनमें अपार शक्ति आ गई थी। जैसे

दीपक बुझने से पूर्व उसकी लौ और ऊंची उठने लगती है।

जलन और पीड़ा से मुक्ति के लिए एक डाक्टर ने परीक्षण के उपरान्त औषधि लिखते हुए कहा—"इस औषधि के सेवन से अवश्य लाभ होगा।"

उत्तेजित मुद्रा में क्रोधित स्वर से रामकृष्ण बोले—"मां, और कितने दिनों तक मुझे जूठन खिलाने में लगाये रखेगी! मुझे कुछ भी तो नहीं हुआ।" गले पर अंगुली घुमाते हुए उन्होंने कहा—"बस, यहां जैसे आग जल रही है···यहीं कुछ हुआ लगता है।"

रात को वार्ता का क्रम बराबर चलाते रहे बिस्तर पर तकिये का सहारा लेकर। गर्मी का आभास होने पर वे बोले—"जरा तुम लोग मेरी हवा करो, बहुत गर्मी लग रही है।"

कुछ शिष्य पंखे से हवा झलने लगे और नरेन्द्र उनके पैरों तले बैठे धीमे-धीमे गोदी में रखे पैर दबाने में व्यस्त उनके विचारों को ध्यान से सुनते रहे। अचानक अपनी करवट बदल कर नरेन्द्र से वे बोले—"इन शिष्यों की अच्छी खबरदारी रखनी है, भला!" इन्हीं शब्दों को उन्होंने कई बार उस रात दुहराने का प्रयत्न किया और फिर विचारों में डूब जाते मौन।

"प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसकी घड़ी ठीक समय दे रही है, परन्तु वास्तव में कोई भी ठीक समय नहीं बतलाती, इससे मनुष्यों के कार्य में कोई बाधा नहीं पहुंचती है।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने बिस्तर पर लेटने का उपक्रम करते हुए कहा—"अब मुझे कुछ नींद-सी आने लगी है—अच्छा जरा सो लूं।" आंखें बन्द कर लीं और श्वास की गति सामान्य रूप से चलती दृष्टिगोचर हुई। लगभग दो घण्टे की निर्विघ्न नींद लेने के उपरान्त एक बजे रात को करवट बदलते हुए उनके भर्राए स्वर से तीन बार काली शब्द के नाम-उच्चारण के साथ 'घड़-घड़' का स्वर भी लोगों को सुनाई पड़ा। उस क्षण देखते-देखते ही उनका मुखमंडल शांत एवं तेजोमय हो गया, बाल खड़े हो गए, नेत्र नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित हो गए और सारा शरीर

एकबारगी जैसे रोमांचित हो उठा। नरेन्द्र गोदी में रखे पैरों को तकिये के सहारे टिका शीघ्रता से बिस्तर से उतर जीने की ओर लपके। वे यह सब अपनी आंखों वे देखना नहीं चाहते थे। श्री मां को ठाकुर जी के देहावसान का पूर्वाभास हो चुका था किन्तु निराशा के साथ आशा की किरण के सहारे प्राणान्त तक सोचती रहीं सम्भव है उनके प्राणों की रक्षा हो जाये। मृत्यु की दृष्टि में सभी समान हैं, उसके आगे मनुष्य की भावना और प्रेम की कुछ भी नहीं चल पाती। डाक्टर ने नब्ज देखी तो नाड़ी की गति बन्द थी।

"ये सब कठिन अभ्यास इस कठोर कलियुग के लिए नहीं जिसमें मनुष्य दुर्बल एवं अल्पायु होते हैं। उन्हें न इसकी आवश्यकता है और न उनके पास इतना खतरा ही उठाने का समय। इन साधनाओं का लक्ष्य मात्र मन को एकाग्र करना है। जो मनुष्य शुद्ध भक्ति भाव से ध्यान लगायेंगे उसे वे सुगमता से प्राप्त कर लेंगे। भगवान की कृपा से सिद्धि का पथ सहज हो जाता है। आवश्यकता केवल इतनी है कि जो स्नेह हम अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों पर लुटाते हैं उस स्नेह-शक्ति को हम भगवान की तरफ लगायें।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

16 अगस्त सोमवार 1886 को ब्राह्म मुहूर्त में इस प्रकार रामकृष्ण अपने भक्तों और स्नेहियों को शोक-सागर की अथाह गहराइयों में डूबो कर इस जगत से महाप्रयाण कर गये। उनके अपने शब्दों में वे एक कमरे से दूसरे में प्रविष्ट हो गये थे। भक्तों और शिष्यों ने हरि ओ३म् का जोर-जोर से जाप करना प्रारम्भ कर दिया।

प्रातःकाल 5 बजे उनका शरीर ठण्डा किन्तु कमर का भाग गर्म होने के कारण श्रद्धालुओं को उनकी महासमाधि के संदर्भ में शंका रही। जब डॉक्टर सरकार ने सभी लक्षणों को परखा तो घोषित किया कि वे महासमाधि में हैं।

चारों ओर कोहराम मच गया। सूर्य की पहली किरण के उगते-उगते सारे शहर में उनकी मृत्यु का दुखद समाचार जंगल में आग की तरह आनन-फानन में फैल गया।

उनके पार्थिव शरीर को गेरुए वस्त्र पहिना कर चन्दन-लेप और फूलों से सजाया गया।

एक खुले स्थान पर उनका पार्थिव शरीर दर्शनार्थ रखा गया। सभी को ऐसा अनुभव हुआ कि वे जैसे भौतिक देह में थे ठीक वैसे ही अपार्थिव अवस्था में भी विराजित हैं। आत्मसमर्पण की अभूतपूर्व शान्त मुस्कान चेहरे पर अब भी स्पष्ट झलक रही थी।

"माली गुलाब के पौधे को उखाड़ कर दूसरी जगह लगा रहा है, क्योंकि उससे सुन्दर-सुन्दर फूलों की बहार पैदा होगी।"

—श्री रामकृष्ण परमहंस

एक घण्टे के पश्चात् शिष्यमंडली के साथ उनके छायाचित्र लिए गये। महापुरुष के दर्शनाभिलाषी श्रद्धालुओं के समूह अपने प्रभु के अन्तिम दर्शनों के लिए काशीपुर के बंगले में एकत्रित होते चले गये। भजन-कीर्तन का स्वर आकाश मंडल में गुंजायमान होता रहा। चारों दिशाओं में हरिगान की गर्जना और जय-जयकार के स्वर आकाश को छूने लगे। जब उनकी अर्थी काशीपुर श्मशान घाट के लिए लाखों की भीड़ लिये सड़कों से गुजरी, ऐसा लग रहा था रामकृष्ण उनके अन्तःकरण में सर्वदा विद्यमान रहेंगे। वे अमर हैं और युगयुगान्तर तक उनकी पावन स्मृतियां जनता के हृदय में अमर रहेंगी।

महाप्रयाण की इस अभूतपूर्व यात्रा के समय दर्शकों के सजल नेत्र बहने लगे थे जैसे आंसुओं के धैर्य का बांध अचानक टूट गया हो।

श्मशान घाट में पहुंच कर उनकी अन्तिम यात्रा समाप्त होने पर शरीर को चिता पर लिटा दिया गया। थोड़ी देर के उपरान्त उनका शरीर आग की लपटों में सदा के लिए सिमट कर राख में परिवर्तित हो गया।

...और उस दिन आध्यात्मिकता का वह देदीप्यमान सूरज भारतीय आकाश मंडल में अचानक डूब गया।

सोलह

उपसंहार

और महाप्रयाण के बाद...

श्री मां शारदा देवी जीवन में इस अपूरणीय क्षति को वृन्दावन, कमार पुकुर और कलकत्ता में कठोर साधना में रत रह कर दूर करने का प्रयास करने लगीं। उनमें मानवीय और दैवी भाव का अभूतपूर्व समन्वय था जिसमें भारतीय नारीत्व की विलक्षण पूर्णता के कारण ही सभी के लिए वे अनुकरणीय बन गई थीं।

श्री रामकृष्ण परमहंस के साथ उनके मिलने से पूर्व निश्चित एक अंश—गृहस्थों के सम्मुख एक आदर्श मूर्ति प्रस्थापित करना, पूर्ण हो चुका था। अब दूसरा अंश शेष था—ठाकुर की आध्यात्मिक शक्ति को शत-सहस्र शिष्यों, भक्तों और विशेषतया भारतीय नारियों को जागरूक करते हुए मानव समाज के बीच प्रसारित करना।

30 अगस्त 1886 को श्री मां अपने व्यथित हृदय की शान्ति के लिए तीर्थयात्रा पर निकल पड़ीं और उत्तरी भारत यात्रा के पश्चात् देवघर (वैद्यनाथ धाम) बनारस और अयोध्या होती हुई वे वृन्दावन में लगभग एक वर्ष रुकीं।

एक दिन काशी विश्वनाथ मन्दिर में आरती के समय उन्हें भाव-समाधि हो गई। योगिन मां से मिलने पर वे एक असहाय बच्चे की भांति बिलख-बिलखकर रो पड़ी, चूंकि वृन्दावन में कठिन तपस्या करते हुए जब

वे राधा, कृष्ण तथा उनके सखाओं से सम्बन्धित स्थानों को देखतीं तो अनुभव होता जैसी उनकी अवस्था वियोगिनी राधा के समान कृष्ण से बिछुड़ने पर हो गई है। जप-स्थान पर वे इतनी तन्मय हो उठतीं कि मक्खियां उनके अंग को नोच-नोच कर खाती रहतीं किन्तु उनकी भाव-दशा अचल रहती, ऐसी मनोदशा में ही उन्होंने एक दिन ठाकुर जी के दर्शन भी किये जिनके निर्देशानुसार उन्होंने स्वामी योगानन्द को नियमानुसार दीक्षित किया। इसके उपरांत श्री मां हरिद्वार गईं और फिर वे जयपुर, अजमेर, प्रयाग होती हुई कलकत्ता वापिस लौट आईं—कालचक्र की गति देखने के लिए।

एक जिज्ञासु ने श्री मां से प्रश्न किया—"कोई निरन्तर भगवत् नाम जपता है, फिर भी भगवान की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?"

श्री मां ने समझाया—"भगवत्-प्रेम धीरे-धीरे उपजता है। यदि मन जप करने में अनिच्छुक या अस्थिर हो, तो भी जप को त्याग देना उचित नहीं है। निरन्तर जप करते रहने पर मन उत्तरोत्तर दृढ़ होता जाता है—जैसे शान्त वायु में दीपक। जिस प्रकार हवा का छोटा-सा झोंका दीपक की लौ को अस्त-व्यस्त कर डालता है, उसी प्रकार मन की दुर्बल इच्छा व विचार मन को अस्थिर बना देता है। मन्त्र का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए क्योंकि अशुद्ध उच्चारण उन्नति में बाधा पहुंचाती है।"

उधर दैवत्व और त्याग के ज्वलन्त विग्रह के साथ तरुण शिष्यों का सांसारिक माया-मोह के बन्धनों में फिर से वापिस लौटना असम्भव था चूंकि श्री रामकृष्ण के कर्मठ परम शिष्य नरेन ने सभी गुरु भाइयों को एकता के सूत्र में बांध लिया था।

नरेन ने दिसम्बर 1886 के अन्तिम सप्ताह में हुगली जिले के आंटपुर नामक ग्राम में ठाकुर के संन्यासी-शिष्य बाबूराम की मां के आमन्त्रण पर बराहनगर मठ के युवा गुरु भाइयों को एकत्र किया। वहां स्वामी रामकृष्ण परमहंस के कठोर संयम और त्याग के दृष्टान्तों को सुन सभी संन्यासी गण भी एक ही रास्ते पर चलने को लालायित थे कि ईश्वर को कैसे प्राप्त किया जाये ? और इस प्रकार चरित्र गठन और आत्मज्ञान उनके जीवन का मूलमंत्र बन गया।

वराह नगर मठ का पवित्र वातावरण जब संकुचित-सा प्रतीत होने लगा तो परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में ईश्वर पर निर्भर रहते हुए हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारे देश में वे भ्रमण करने निकल पड़े।

एक साधु के पास नाविक को देने के लिए धन नहीं था, इसलिए वे शार्क मछलियों से भरे समुद्र की बांहों में कूद गये और बड़े आत्मविश्वास के साथ उस पवित्र चट्टान पर पहुंच कर तीन दिन और तीन रात निरंतर भारतवर्ष की समस्याओं के हल ढूंढ़ने में तल्लीन हो रहे। वहीं स्वामी जी ने अमेरिका जाने का निर्णय किया।

मैसूर के महाराजा, रमन्द के राजा सेतुपाल, पोरबन्दर के प्रधानमंत्री और तमिल के विद्वान अलरूंग पेरुमल के सहयोग से शिकागो में आयोजित सर्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दूधर्म का प्रतिनिधित्व करने पहुंचे।

अपने गुरुदेव रामकृष्ण परमहंस के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा—"यदि वाणी, मन और कर्म से मेरे द्वारा कुछ प्राप्त हुआ है, मेरे ओठों से एक भी ऐसी बात निकली है जिससे संसार के किसी भी व्यक्ति का कल्याण हुआ है, तो इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है, सारा का सारा उन्हीं का है। पर यदि मेरे मुख से अपवचन निकले, घृणा का भाव व्यक्त हुआ हो, तो वह अब मेरा है, उनका कुछ भी नहीं। जो कुछ भी दुर्बलता युक्त है, वह मेरा है और जो कुछ भी जीवनप्रद है, शक्तिदायी, पूत और पवित्र है, उस सबके पीछे उन्हीं की प्रेरणा है, उन्हीं के शब्द हैं और वे ही स्वयं हैं। हां, मेरे मित्रो! अभी संसार के लिए उस व्यक्ति को जानना शेष है।"

भारत की गौरवमयी सांस्कृतिक धरोहर वैदिक सत्यों की ऐसी व्याख्या स्वामी विवेकानन्द ने की कि पाश्चात्य दुनिया के श्रोता मंत्रमुग्ध रह गये। विश्व के तूफानी दौरों के पश्चात उन्होंने 1 मई 1897 को श्री रामकृष्ण के शिष्यों और भिक्षु बन्धुओं की उपस्थिति में 'रामकृष्ण मिशन' के प्रतीक चिह्न के रूप में एक कलात्मक अभिव्यक्ति दी जिसके फलस्वरूप श्री रामकृष्ण मठ एवं मिशन की स्थापना कर बेलूर में मुख्यालय बनाया गया। आज विश्व में रामकृष्ण मिशन के लगभग 100 केन्द्र हैं जो ज्ञान-योग, भक्ति-योग और कर्म-योग के सिद्धांतों पर आधारित समर्पण, एकता और सेवा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

□□

राष्ट्र भाषा को प्रोत्साहन दीजिये

पढ़िये

हिन्दी की लोकप्रिय पॉकेट बुक्स

"हिन्दी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी देश को उतना लाभ होगा।"

—जवाहर लाल नेहरू

"हिन्दी अब सारे भारत की राष्ट्र भाषा बन गई है। हमें उस पर गर्व होना चाहिए।"

—सरदार बल्लभ भाई पटेल

"मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो यह मैं नहीं सह सकता।"

—विनोबा भावे

हिन्दी पॉकेट बुक्स

ई-५/२०, कृष्णा नगर, दिल्ली-११००५१

E-5/20, KRISHNA NAGAR, DELHI-110051